पतिव्रताचरितम्

चन्द्रनाथरचितम्

पातिव्रताचारितम्

चन्द्रनाथरचितम्

Grateful acknowledgment by the author is due to the Academy of Art, Culture & Languages, Jammu, for granting a subsidy for a partial printing of this book.

Price : Rs. 30

December 15, 1984

Author :

Pt, Chandranath,
"Triveni",
6/4, Trikuta Nagar,
Jammu 18,00,01

Printer : S. N. Magotra Printing Press, Jammu

॥ श्रीहरिः ॥

जम्मूस्थश्रीरणवीर-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठप्राचार्याणां
प्राच्यप्रतीच्योभयविद्यानिष्णातानां श्रीमतां
डा० मुरलीधरपाण्डेयमहोदयानाम् शुभाशंसनम्

जम्मूकश्मीर विद्वन्मण्डलीमण्डनेन पण्डितप्रकाण्डेन सहृदय-धुरीणेन श्रीचन्द्रनाथशर्मणा ग्रथितमिदं नवकोमलकुसुमकलिकापद्या-वलिकाव्यमिदम् पतिव्रताचरितम् अन्तःप्रविष्टेन मया साधु आस्वादितम् । यद्यपीदं साहित्यशास्त्रनिर्धारितमहाकाव्यखण्डकाव्यादि-लक्षणावलिं नावधाति तथापि पुराणपरम्परामनुसृत्य पौराणिकीं पद्धतिं चाश्रित्य नैमिषारण्यवासिनां मुनीनां शिवविष्णुब्रह्मपुरीग-मनानन्तरं वैकुण्ठपुर्यां महर्षिनारदसन्निधौ समुपेतानां सद्गुणसम्पन्न नर-नारीकथाशुश्रूषूणां मुनीनां मनस्तोषाय श्रीनारदेन पतिव्रता-शिरोमणीनां श्रीवीरादेवीनां चरितकथा आश्राविता । पतिव्रता वीरादेवी चरितवर्णनव्याजेन श्रीवीरादेवीपत्नीवियोगजन्यदुःखम-सहमानेन कविवरेण प्रभूतसुकविसूक्तीनामनेकतीर्थयात्राणां वहु-विधनीत्युपदेशानां काव्यजीवातूभूतानेकरसानां काव्योपजीव्यानां गुणरीत्यलङ्काराणां बहुषु स्थलेषु मनोहरः सन्निवेशः कृतः । मुद्रणादिजन्यः कश्चनदोषोऽपि लक्षितस्तथापि सुधीनां कवीनां सुरभारतीसमुपासकानां प्रमोदकरं यशस्वि चेदं काव्यं भवेदिति काशीपतिं श्रीविश्वनाथं प्रार्थयते —

(डा०) मुरलीधरपाण्डेयः

जम्बूनामपुरी पुरीषु विदिता विद्योतते भूतले
तस्यां विप्रकुलेऽस्ति काव्यरसिकः श्रीचन्द्रनाथः सुधीः ।
देवी वीरवती सती गुणवती तस्य प्रियाऽवर्त्तत
तस्याः शुद्धचरित्रचित्ररचितं काव्यं बुधैः स्वाद्यताम् ।।

श्रीचन्द्रनाथविरचितं पतिव्रताचरितमहं सम्यक् विलोकितवानस्मि । काव्येऽस्मिन् कविना पूर्वकवीनां दायमाधारीकृत्य स्वीयया निर्मलया प्रतिभया तत्र किमपि नूतनं वैचित्र्यं समावेश्य स्वभार्यायाश्चरित्रमतीवकौशलेन रसभावादिमाध्यमेन चित्रित मस्ति । जम्बूधरातः काव्यक्षेत्रे पण्डितप्रवराणां श्रीशुकदेवशास्त्रिणां जितमलचरितस्य पश्चात् श्रीचन्द्रनाथकृतिरियमपरः स्तुत्यः प्रयासो वरीवर्ति । सुतरां सफलोऽयं प्रयास इतिकारणात् परमं प्रमोदमावहामि । पूर्वकविभिः सह सादृश्यमत्र तुल्यदेहितुल्यता एवास्ति । यद्यप्यत्र केषांचित्काव्यलक्षणानां निर्वाहः सम्यङ् नास्ति तर्हि अपि इयं काव्यसम्पदतिशयेन बहुमूल्या अस्ति । इयं श्रीचन्द्रनाथकाव्यचन्द्रचन्द्रिका विद्वज्जनमनःसमुद्रेषु अवश्यं विशेषमान्दोलनं जनयिष्यतीति मे शुभाशसेति शम् ।

डा० प्रियतमचन्द्र शास्त्री साहित्यचार्यः विद्यावारिधिः
साहित्य विभागाध्यक्षः
श्रीरणवीरकेन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम् जम्बू

पाण्डुलिपि संशोधकाः-

श्री परशुराम शास्त्री,
डा० बालकृष्ण शास्त्री, एम. ए. पी. एच, डी.
डा० प्रियतमचन्द्र शास्त्री, पी. एच. डी.

प्राक्कथनम्

काव्यमार्गानभिज्ञोऽहं न च शास्त्रेषु मे गतिः ।
नाहं कविर्न वा विद्वान् संसर्गो न च पण्डितैः ।।१।।

कविता कैसे की जाती है, इसका मुझे पूरा ज्ञान नहीं है । न तो मैंने शास्त्रग्रन्थ पढ़े हैं और न मैं विद्वान् हूं । न कोई कवि हूं । विद्वान् पण्डित समुदाय के साथ मेरा मेलजोल भी नही रहा ।।१।।

ज्ञानं मे देवभाषाया व्याकृत्यास्तावदेव वै ।
यन्मात्रमाङ्ग्लपद्धत्या गृहीतं शैशवे मया ।।२।।

संस्कृत भाषा के व्याकरण का ज्ञान मुझे बचपन के दिनों में केवल उतना ही प्राप्त हो सका जितना उन छोटी-छोटी व्याकरण पुस्तकों में होता था जो प्रायः अंगरेजी भाषा में लिखी होती थी ।।२।।

पाणिनीयानि सूत्राणि नाधीतानि श्रुतानि वा ।
पातञ्जलमहाभाष्यं न दृष्टं नापि कौमुदी ।।३।।

पाणिनि ऋषि के सूत्र अथवा पतञ्जलि ऋषि का महाभाष्य एवं सिद्धान्त कौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थ पढ़ने का तो स्कूल-कालिज

के दिनों में मुझे अवसर ही नहीं मिला, क्योंकि ये सब ग्रन्थ उन दिनों स्कूल के पाठ्यक्रम में नहीं होते थे । यह ग्रन्थ पढ़ने तो दूर, मैं ने आज तक देखे भी नहीं ॥३॥

संस्कृतस्याङ्ग्लपद्धत्याऽधीतं व्याकरणं मया ।
बाल्ये वयसि यत्किञ्चिद्बहुलं तच्च विस्मृतम् ॥४॥

देव भाषा संस्कृत के व्याकरण का ज्ञान मुझे केवल उतना ही है जितना मैं ने बचपन में अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त किया था। उस थोड़े से व्याकरणज्ञान का वहुत सा भाग तो मुझे भूल भी चुका है ॥४॥

अध्यापकपदं प्राप्य राज्य विद्यालयेषु च ।
वाङ्मयंह्याङ्ग्लभाषाया नित्यमध्यापितं मया ॥५॥

पढ़ाई समाप्त करके मैं गवर्मेण्ट हाई स्कूलों में अध्यापक नियुक्त हो गया। उन स्कूलों में सब पुस्तकें मुझे अंग्रेजी भाषा में पढ़ानी पड़ती थीं । संस्कृत भाषा या हिन्दी भाषा में नहीं ॥५॥

गणितं ज्यामितिज्ञानं तद् बीजगणितं तथा ।
इतिहासं च भूगोलमित्यादिविषयानपि ॥६॥
नानादेशेतिवृत्तं च पुराणं चाधुनातनम् ।
माध्यमेनाङ्ग्लभाषाया उपदिष्टं हि सर्वदा ॥७॥

इन स्कूलों में या तो मैं हिसाब का विषय पढ़ाया करता था, ज्योमेट्री या अल्जबरा या हिस्टरी या भूगोल आदि विषय या भारत का प्राचीन अथवा आधुनिक इतिहास एव अन्यदेशों के अर्वाचीन इतिवृत्त भी मुझ पढ़ाने पड़ते थे और ये सब विषय अंग्रेजी के माध्यम से ही पढ़ाता था ॥६, ७॥

प्रधानाध्यापकस्यैवं राज्यविद्यालयेषु च।
गीर्वाणवाणीसंसर्गो न जातो दूरतोऽपि मे ॥८॥

कुछ समय बाद मैं गवर्मेण्ट स्कूलों में प्रधानाध्यापक के पद पर काम करने लगा। यह सब बातें जताने से मेरा आशय इतना ही है कि अपने विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् संस्कृत भाषा से मेरा सभी प्रकार का सम्बन्ध टूट सा गया हुआ था ॥८॥

षष्टिवर्षान्तरालेन चाङ्ग्लभाषानुषङ्गिणा।
मधुरा संस्कृताभाषा विस्मृता प्रायशो मया ॥९॥

बीस साल की आयु के बाद से लेकर आज तक मेरा सब लिखने पढ़ने या पढ़ाने का काम अंग्रेजी भाषा में ही होता रहा। अतः साठ वर्षों के इतने लम्बे समय में मधुर संस्कृत भाषा को मैं भूल सा गया था ॥९॥

अपारः कवितासिन्धु नौका कापि न दृश्यते।
तथाऽपि तरणो तस्य विद्यते मे दुराग्रहः ॥१०॥

संस्कृत भाषा में कविता करना कोई सरल काम नहीं। संस्कृत काव्य तो उस समुद्र के समान है जिसका कोई आरपार ही नहीं। जिस मनुष्य के पास छोटी सी नाव भी न हो और वह इस अगाध कविता सागर के पार जाना चाहता हो, वह मनुष्य कितना दुराग्रही होगा ? ॥१०॥

देशे देशे च काव्यज्ञाः काले कालेऽभवन्पुरा।
तेषां सङ्गृह्य पद्यानि सुन्दराणि प्रयत्नतः ॥११॥
पुष्पाणीवात्र विन्यस्य यथास्थानं यथाक्रमम्।
शब्दपुष्पैर्निजैश्चापि स्रगेका निर्मिता नवा ॥१२॥

प्राचीन-काल से लेकर आज तक काव्य-शास्त्रों का ज्ञान

रखने वाले अनेकों कवि प्रत्येक देश तथा प्रत्येक काल में हो चुके हैं उनके सुन्दर पद्यों को सुगन्धित फूलों के समान जैसे कोई बड़े यत्न से चुनता जावे और उन पुष्पों के साथ-साथ यथास्थान और यथाक्रम अपनी ओर से भी कुछ शब्दपुष्पों को मिलाकर एक माला तय्यार करले, उसी प्रकार का प्रयास मैंने भी किया है ।।११, १२।।

क्वचित्पद्यं प्रसङ्गेण कवेरन्यस्य चोद्धृतम् ।
इङ्गितं चक्रचिन्हेन(★) पद्यं ज्ञेयं न तन्मम ।।१३।।

यदि प्रसङ्गानुसार किसी अन्य कवि का पद्य मैंने कवि के शब्दों में ही उद्धृत कर दिया है तो उस पद्य पर मैंने चक्र(★) जैसा चिह्न लगा दिया है जिससे पता चल जावे कि वह पद्य मेरा नहीं है ।।१३।।

विदुषां कविवर्याणां कृतयो रसमञ्जुलाः ।
कृतशब्दान्तराश्चापि विभान्त्यत्र सुशोभनाः ।।१४।।

विद्वान कवियों द्वारा रचित कुछ रसभीने पद्यों के शब्द बदल कर किए हुए प्रयोग भी आपको यत्र तत्र मिलेंगे और आप देखेंगे कि उन्हें कितनी सुन्दरता से उपन्यस्त किया गया है ।।१४।।

कवीनां पदलावण्यं तदीया भावसम्पदः ।
सर्वं नव्यमिवाभाति नवग्रंथनकौशलात् ।।१५।।

उन पद्यों को मौलिक सुन्दरता तथा भावसौष्ठव ने बिल्कुल नये ढंग से प्रस्तुत होने के कारण अपना पुराना रूप खोकर एक अनूठी नवीनता धारण करली है ।।१५।।

आइ एम् सॉरी = I Am Sorry = अवसीदति चेतो मे

"आय्येम् सॉरीति" सम्प्रोक्तं वाक्यं चेद् दोषनाशकम् ।
क्षन्तव्यो ननु मे दोषः क्षमा हि विदुषां धनम् ।।१६।।

यदि किसी से कभी कोई अनुचित बात हो जावे तो आजकल के रिवाज के अनुसार, "आई एम सारी" कह देने से वह दोष क्षम्य मान लिया जाता है। मेरा दोष आप भी क्षमा कर देंगे ऐसा मेरा विश्वास है, क्योंकि विद्वान् लोगों का तो स्वभाव ही क्षमाशील होता है ॥१६॥

बद्धपाणिः स्थितोऽस्म्येष युष्मदग्रेऽपराधकृत् ।
क्षन्तुमर्हन्ति विद्वांसः प्रार्थये नतमस्तकः ॥१७॥

मुझ से अपराध हो गया है—यह मैं मानता हूं। अब आपके सामने दोनों हाथ जोड़ कर अपराधी के रूप में खड़ा हूं। आपसे मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप तो विद्वान हैं, क्षमाशील हैं। मुझे क्षमादान देवें ॥१७॥

———

पतिव्रताचरितम्

अथैकस्मिन्दिने केचिन्नैमिषारण्यवासिनः ।
ऋषयो मुनयः सर्वे सिद्धवर्यास्तपस्विनः ॥१॥

एक दिन की बात है कि नैमिषारण्य में रहने वाले कुछ ऋषि मुनि, सिद्ध तपस्वी लोग एक स्थान पर इकट्ठे हुए ॥१॥

कैलाशशिखरासीनं देवदेवं महेश्वरम् ।
समापुः श्रीमहादेवं प्रश्नोत्तरपिपासया ॥२॥

और फिर अपने कुछ प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए देवदेव महादेव भगवान् शिव के पास जा पहुंचे जो उस समय कैलाश पर्वत के शिखर पर बैठे हुए थे ॥२॥

ध्यानमग्नं समाधिस्थं मौनीभूतं समीक्ष्य तम् ।
सविषादं न्यवर्तन्त क्लान्ता म्लानमुखास्ततः ॥३॥

वहां पहुंच कर ऋषियों ने देखा कि भगवान् शिव महाराज तो अपने ही ध्यान में मग्न हैं। समाधि लगा कर बैठे हैं। बोलते-चालते कुछ नहीं उनसे बात की जाए तो कैसे करें ? यह देखकर वह सब ऋषि मुनि म्लानमुख हो गए। उनके मन में बड़ा दुःख था

कि भगवान् शिव से उनकी कोई बात न हो सकी । अतः वह कैलाश पर्वत से वापिस चले आए ।।३।।

तदा ते मुनयः सर्वे जग्मुः क्षीरमहोदधिम् ।
दृष्टस्तत्र च तै विष्णुर्भगवान्कमलापतिः ।।४।।

तत्पश्चात् वे सब ऋषि वहां से चलते चलते उस स्थान पर जा पहुंचे जहां क्षीर समुद्र है । वहां पहुंच कर उन्होंने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के दर्शन किए ।।४।।

लक्ष्मीसेवाप्रसन्नात्मा निद्रामुद्रितलोचनः ।
शेवशय्याशयानश्च सुखंनिद्रागतस्तथा ।।५।।

पर वहां पहुंच कर मुनियों ने देखा कि विष्णु भगवान तो शेषनाग की शय्या पर बड़े आराम से लेटे हुए हैं और लक्ष्मी भगवती की सेवा से सन्तुष्ट होकर उन्होंने अपनी आंखें बन्द की हुई हैं । ऐसा लगता था कि वह तो बड़े सुख से सो रहे हैं ।।५।।

गाढनिद्राभिभूतं तं संवीक्ष्य परमेश्वरम् ।
मुनयस्ते समायातास्तस्मादपि निराशया ।।६।।

जगत्पति विष्णु भगवान् को इस प्रकार गाढ़ निद्रा में लेटे हुए देखकर सब मुनि निराश हो गए और क्षीरसागर से भी लौट पड़े ।।६।।

तस्मात्क्षीरोदधिप्रान्ता तसन्निवृत्तास्ततः तुनः ।
ब्रह्माणं प्रतिजग्मुस्ते पद्मकोषपरिस्थितम् ।।७।।

क्षीर समुद्र से लौट कर वे ऋषिगण फिर उस स्थान की ओर चल पड़े जहां कमल फूल के कोष के अन्दर प्रजापति ब्रह्मा बैठे हुए थे ।।७।।

वेदाध्ययनसंलग्नं सामगायनतत्परम् ।
दृष्ट्वा तं च महात्मानः किञ्चित्कालमवस्थिताः ॥८॥

ऋषि मुनियों ने वहां देखा कि सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा वेदों के अध्ययन में मग्न होकर सामवेद की ऋचाओं का गायन कर रहे थे। इस अवस्था में भगवान् को देखकर वे ऋषि कुछ देरके लिए वहीं रुक गए ॥८॥

यावद्गानसमाप्तिः स्यात् तावत्तत्रैव ते स्थिताः ।
सामगानं समाप्यैवं विधिः पप्रच्छ तान्मुनीन् ॥९॥

उन्होंने सोचा कि जब तक वेदगान की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक हमें यहां ही ठहर जाना चाहिए । जब वेद गीतों की समाप्ति हो गई, तो ब्रह्माजी ने मुनियों को देख उनके वहां आने का कारण पूछा ॥९॥

मुनिश्रेष्ठा महात्मानो दृष्ट्वा युष्मान्समागतान् ।
प्रहृष्टोऽस्मि महाभागा भवदागमनं कुतः ॥१०॥

हे महातमा ऋषि मुनियों, आपको अपने पास यहां आया देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है । आप कृपा कर अपने यहां आने का कारण बताएं ॥१०॥

मुनिवर्याः समस्तास्ते भक्त्या नत्वा प्रजापतिम् ।
अब्रुवन्सादरं सर्वे विधिं वीक्ष्य प्रियंवदम् ॥११॥

तब सब ऋषियों ने बड़ी भक्ति से झुक कर प्रजापति को प्रणाम किया और जब उन्होंने देखा कि भगवान ब्रह्मा तो उनसे बड़ी प्रेमभरी बातें कर रहे, हैं तब वे ऋषि उत्साहित होकर बड़े आदर से बोले ।।११।।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ युगोऽयं दारुणः कलिः ।
कलिना धर्ममार्गोऽयं बलिना कवलीकृतः ॥१२॥

हे भगवन्, आप तो सब धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हैं । पर इस युग में भगवान् कलि का कठोर शासन चल रहा है । और कलि देवता बड़े बलवान् हैं । निर्दयी भी हैं । उन्होंने सब धर्म मार्गों को मलियामेट कर दिया है ॥१२॥

कलौ लुप्तः सदाचारः सत्यमार्गः श्रुतिः स्मृतिः ।
त्यागः शांतिर्दया शौचं सत्यं शीलं दमः शमः ॥१३॥

आजकल सदाचार का लोप हो चुका है । यही हाल हो गया है सत्यमार्ग और श्रुति अथवा स्मृति शास्त्रों का । शान्ति, त्याग, दया, पवित्रता, शील, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह आदि का कोई नाम तक नहीं जानता ॥१३॥

सत्यं प्रव्रजितं तपश्च चलितं धर्मश्च दूरे गतः ।
पृथ्वी मन्दफला नराः कपटिनश्चित्तं च शाठ्यान्वितम् ।
राजानोऽर्थपरा न रक्षणपराः पुत्राः पितुर्दोषिणः ।
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्तेकलौ दुर्जये ॥१४॥(★)

सत्य का किसी को भी पता नहीं । तप और धर्म से सब दूर भागते हैं । अब तो पृथ्वी भी पहले जैसी उपज नहीं देती । लोग कपट करने में प्रवीण हैं और शठ होते जाते हैं । शासक लोग रक्षा करने के स्थान पर पैसा इकट्ठा करना जानते हैं । पुत्र अपने पिता के दोष निकालते हैं । जो लोग साधु स्वभाव हैं वह कष्ट उठाते हैं । और, जो धूर्त हैं उनका बोलबाला हो रहा है ॥१४॥

निर्विघ्नप्रसरे कलावपि बलान्निष्कण्टकं वैदिकं ।
पन्थानं परिपाति यस्तु स नरो दुःखातुरः सर्वदा ॥

विद्राणे क्रतुभुग्गणे विकरुणे निद्राति नारायणे।
ब्राह्मण्याय जलाञ्जलिः किल भुवि प्राज्ञैः
प्रदेयो भवेत् ॥१५॥(★)

कलियुग का प्रभाव दिन दिन हर जगह फैल रहा है । वेदों तथा शास्त्रों के बताए हुए रास्ते पर जो चलता है, वह तो सदा दुःख ही भोगता है । पता नहीं, सारे देवता कहां जा छुपे हैं ? अब तो ऐसा लगता है कि भगवान नारायण भी कहीं जा कर सो रहे हैं । इसलिये कोई भी समझदार मनुष्य शास्त्रों के बताए रास्ते पर चलने का यत्न ही नहीं करता ॥१५॥

न देवे देवत्वं कपटपटवस्तापसजनाः,
नरा नष्टा भ्रष्टाः प्रभवति कठोरे कलियुगे।
गता गीता नाशं क्वचिदपि पुराणं व्यपगतं,
जनो मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिर्जलधरः ॥१६॥(★)

यही प्रतीत होता है कि देवताओं का अब कोई प्रभाव नहीं रहा । तपस्वी लोग भी कपटी बनते जाते हैं, सब लोग भ्रष्ट हो रहे हैं और कलियुग के प्रभाव से गीता अथवा पुराण ग्रंथों को कोई नहीं पढ़ता । लोग मिथ्यावादी हो रहे हैं । आजकल तो बादल ठीक समय पर वर्षा भी नहीं करते ॥१६॥

वेदोच्चारणसन्तुष्टा स्तत् क्रियां कर्त्तुमक्षमाः।
कुशलाः शब्दवार्त्तायां धर्महीना द्विजातयः ॥१७॥

द्विजाति लोग धर्म-हीन होते जाते हैं। धर्म की केवल बड़ी-बड़ी बातें करने में अत्यन्त कुशल हैं । वेदों के मन्त्रों को पढ़ तो जरूर लेते हैं, पर वेद शास्त्रों के बताए रास्ते पर चलने का कष्ट कौन उठाए ॥१७॥

नरैर्नाद्रियते धर्मो न नारी धर्मचारिणी।
नरा मांसाशिनः क्रूरा नार्यो निन्द्यश्च गर्विताः ॥१८॥

लोग धर्म का आदर करना नहीं जानते, फिर स्त्रियां ही धर्ममार्ग पर क्यों चलें ? पुरुष तो क्रूर स्वभाव के हो ही रहें हैं और खुलकर मांस मद्य आदि का सेवन करते हैं । पर अब तो स्त्रियां भी वैसा ही करने में गर्व अनुभव करती हैं एवं निन्दा के योग्य बनती जा रही हैं ॥१८॥

कोऽपि दृष्टो नरः किं नु त्वया धर्मपरायणः।
दृष्टाऽथवा त्वया नारी काऽपि सद्धर्मचारिणी ॥१९॥

हे भगवन्, क्या इस कलियुग में आप किसी ऐसे आदमी को जानते हैं, जो धर्म परामण हो या आपको कहीं कोई ऐसी स्त्री मिली है जो वास्तव में धर्म चारिणी है ? ॥१९॥

एवं पृष्टो विधाता तानवदन्मुनिसत्तमान्।
एतादृशं नरं नैव जानामि तु कलौ युगे ॥२०॥

मुनि महात्माओं ने जब ब्रह्मा जी से यह प्रश्न पूछा तो भगवान बोले कि, हे मुनियो, जिस प्रकार के पुरुष के विषय में आपने मुझे पूछा है वैसा कोई पुरुष कलियुग में मैंने तो नहीं देखा ॥२०॥

नारीमेतादृशीं नूनं जानीते नारदो मुनिः।
यूयं गच्छत वैकुण्ठं तत्र तिष्ठति नारदः ॥२१॥

पर इस प्रकार की एक नारी का नारद मुनि जी को पता है । उसके विषय में जानने के लिए आप वैकुण्ठ में चले जाएं क्योंकि इस समय नारद जी वहीं बैठे हुए हैं ॥२१॥

जग्मुस्ते मुनयः सर्वे वैकुण्ठं प्रति सत्वरम् ।
अतिष्ठद् यत्र देवर्षिर्नारदो मुनिसत्तमः ॥२२॥

इतना सुनते ही वह सब ऋषि मुनि वैकुण्ठ की ओर चल पड़े, क्योंकि वहां पर देवर्षि नारद जी के पास वह जल्दी पहुंचना चाहते थे ॥२२॥

कल्पद्रुमस्य छायायां ऋषिभिः परिवेष्टितः ।
नमश्चक्रुश्च तं सर्वे भक्तिनम्रास्तपोधनाः ॥२३॥

वहां जा कर उन्होंने क्या देखा कि श्री नारद जी के चारों ओर ऋषियों का जमघट लगा है। वहां तो आगे ही उनको अनेक ऋषि-मुनियों ने घेर रखा है। नारद जी कल्प वृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। इन सब तपस्वी ऋषियों ने वहां जाकर उनको बड़ी भक्ति तथा नम्रता से प्रणाम किया ॥२३॥

तत्र ते ददृशुश्चान्यान् महासिद्धान् महामुनीन् ।
यतींश्च किन्नरांश्चापि गन्धर्वान्सामगायकान् ॥२४॥

इन ऋषियों ने वहां देखा कि बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष तथा महामुनि पहले ही से बैठे हैं। वहां तो यति तथा किन्नर लोग भी थे, गन्धर्व भी थे, जो सामवेद का गायन किया करते हैं ॥२४॥

तत्र तैर्मुनिभिः दृष्टः कपिलश्च्यवनस्तथा ।
पराशरोऽथ जाबालिः सुयज्ञो गौतमोऽपि च ॥२५॥

फिर उन्होंने वहां पर क्या देखा कि कपिल तथा च्यवन ऋषि भी बैठे हैं, पराशर और जाबालि भी हैं, सुयज्ञ और गौतम भी हैं ॥२५॥

महर्षिर्याज्ञवल्क्यश्च कुशाम्बो गाधिरप्यथ ।
ऋचीकश्च शतानन्दो भरद्वाजस्तथा मुनिः ॥२६॥

जितने ऋषिमुनि वहां इकट्ठे होकर बैठे थे उनके नाम कौन बता सकता है ? वहां पर यज्ञवल्क्य भी थे कुशाम्ब, गाधि, ऋचीक, शतानन्द भारद्वाज मुनिभी थे ॥३६॥

अगस्त्यश्च मरीचिश्च जैमिनिश्च विभाण्डकः ।
स्थितस्तत्र च शाण्डिल्यः समैत्रेयश्च कश्यपः ॥२७॥

अगस्त्य, मरीचि, जैमिनि, विभाण्डक, शाण्डिल्य, मैत्रेय, कश्यप ॥२७॥

विश्वामित्रो वसिष्ठश्चारिष्टनेमिः पतञ्जलिः ।
वामदेवोऽथधौम्यश्चदेवलोऽपि महामुनिः ॥२८॥

विश्वामित्र, वसिष्ठ, अरिष्टनेमि, पतञ्जलि, वामदेव, धौम्य, देवल, आदि सब महर्षि वहां बैठे थे ॥२८॥

इत्येत ऋषयः पुत्राः मुनीनां च स्त्रियस्तथा ।
तेषां बान्धवसङ्घाश्च तत्रातिष्ठन् समन्ततः ॥२९॥

यह सब ऋषि मुनि तो वहां थे ही, साथ ही उन ऋषियों की स्त्रियां भी थीं, पुत्र भी थे तथा उनके रिश्तेदारों का समूह भी श्री नारद भगवान् जी को चारों तरफ से घेर कर बैठा हुआ था ॥२९॥

अद्भुता सा सभा दिव्या मुनिगन्धर्वयोगिनाम् ।
सिद्धानां मरुतां चापि वसूनां च यशस्विनाम् ॥३०॥

वहां पर अनेकों मुनियों, गन्धर्वों, सिद्धों, वसुओं, मरुद्गणों, आदि यशस्वी योगियों की एक अद्भुत् सभा लगी हुई थी ॥३०॥

अद्भुतः स समारोहो विचित्रः स समागमः ।
ऋषीणां मुनिवर्याणां यतीनां विजितात्मनाम् ।।३१।।

उस अभूत पूर्व सभा को आप कोई बड़ा समारोह अथवा ऋषि मुनि और यति लोगों का अद्भुत समागम समझ लीजिए, उन सबने अपनी आत्मा को वश में कर रखा था ।।३१।।

तेषां मध्ये स्थितः श्रीमान् नारदो मुनिनायकः ।
विरराज यथा चन्द्रो नक्षत्रपरिवेष्टितः ।।३२।।

उस समय उन सब ऋषिमुनियों के मध्य में बैठे हुए श्रीमान् नारदमुनि जी ऐसे सजते थे जैसे सितारों के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हों ।।३२।।

नैमिषा मुनयस्तत्र दृष्ट्वा दृश्यं तदद्भुतम् ।
श्रद्धावनतमूर्द्धानः शशंसुर्नारदं मुनिम् ।।३३।।

उस अद्भुत्-दृश्य को देखकर नैमिषारण्य से आए हुए ऋषिमुनि लोगों के मस्तक श्रद्धा से झुक गए और श्री नारद जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने नारद जी की बड़ी स्तुति की ।।३३।।

देवर्षे भगवन् देव वीणाधारिन् महामुने ।
अबाधगतिको भूत्वा लोकेषु चरसि ध्रुवम् ।।३४।।

मुनि बोले, हे भगवन् आप तो देवर्षि हैं । सब मुनियों से श्रेष्ठ हैं । अपने हाथों में वीणा धारण करके आप तीनों लोकों में घूमते फिरते हैं । आप जहां भी चाहें हर जगह आ जा सकते हैं । आपकी गति को रोकने की सामर्थ्य किसको है ।।३४।।

अपि दृष्टः श्रुतः कोऽपि धर्मात्मा पुरुषस्त्वया ।
घोरे कलियुगेऽप्यस्मिन् यः परं विजितेन्द्रियः ।।३५।।

हम आप से इतना ही पूछना चाहते हैं कि इस घोर कलियुग के माने में क्या आपने कहीं पर कोई ऐसा आदमी देखा है जो धर्मात्मा हो या जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो ? ।।३५।।

दृष्टा काऽपि त्वया नारी किं वा सद्धर्मचारिणी ।
तपोधना तपोदान्ता धर्मशीला पतिव्रता ।।३६।।

अथवा आपने कहीं कोई ऐसी स्त्री देखी है, जो धर्म चारिणी हो, पतिव्रता हो और तपस्विनी हो ।।३६।।

एवं तैर्मुनिभिः पृष्टो नारदः सत्यवागृषिः ।
अब्रवीत्तान्मुनीन्सर्वान् सूनृतां स सरस्वतीम् ।।३७।।

जब नारद जी ने उन मुनि महात्माओं के प्रश्न सुने तो उन मुनियों को सब सच्ची बात कह दी ।।३७।।

अलभ्यः पुरुषस्तादृग् वर्तते तु कलौ युगे ।
निवृत्तिधर्मनिरतो निर्ममो निरहङ्कृतिः ।।३८।।

उन्होंने कहा, हे मुनियो जिस प्रकार का पुरुष आपने बताया है वैसा कलियुग में मिलना बड़ा कठिन है, जो निवृत्ति धर्म में निरत हो और जिसको कभी अहंकार न हुआ हो ,।३८।।

कोऽपि कुत्रापि भूलोके न दृष्टः पुरुषो मया ।
निःसङ्गो न्यस्तकर्मा वा प्रशान्तः शुद्धमानसः ।।३९।।

ऐस पुरुष मैंने कहीं भी नहीं देखा जो निःसङ्ग हो, शान्त मन वाला हो और जो अन्दर-बाहर से शुद्ध हो ।।३९।।

नूनमेका मया दृष्टा नारी धर्मपरायणा ।
न काऽपि तत्समा लोके विद्यते सत्पथे स्थिता ।।४०।।

पर एक नारी मैंने अवश्य देखी है, जो वास्तव में ही धर्म परायण है और जिसके समान सत्य मार्ग पर चलने वाली कोई दूसरी स्त्री आजकल कहीं भी दिखाई नहीं देती ॥४०॥

एकदाऽहं भ्रमंल्लोके गतो जाम्बवतीं पुरीम् ।
तत्राहं दृष्टवान् साध्वीं धर्मिष्ठां धर्मवत्सलाम् ॥४१॥

एक बार मैं तीनों लोकों में घूम रहा था। इस प्रकार घूमता-घूमता मैं जाम्बवती पुरी (जम्मू) में जा पहुंचा। वहां पर ही मैंने उस साध्वी स्त्री को देखा था, जिसे धर्म कार्यों में वास्तविक श्रद्धा थी ॥४१॥

नदीतीरे स्थितां तन्वीमपश्यम् स्नातुमागताम् ।
अभिजातकुलस्त्रीभिः सखीभिः परिवेष्टिताम् ॥४२॥

उस समय वह स्नान करने के लिए नदी के किनारे खड़ी थी और वहां मैंने देखा कि ऊंचे कुल की प्रतिष्ठित स्त्रियों ने उसे घेर रखा था, जो उसकी सखियां प्रतीत होती थीं ॥४२॥

शोभमानां सखीसङ्घे भासमानां स्वतेजसा ।
सौन्दर्यस्य निधौ रम्यां मूर्त्तिं रत्नमयीमिव ॥४३॥

वह स्त्री उन सखियों के समूह में अपने तेज से ऐसे शोभायमान हो रही थी जैसे बहुमूल्य रत्नों से जगमग करती हुई कोई मूर्ति सुन्दरता के खज़ाने में खड़ी हो ॥४३॥

वीराङ्गनां नदीतीरे देवीमिवपरिस्थिताम् ।
एवं श्रीवीरदेवीति नाम्नाऽऽख्यातां सखीजनैः ॥४४॥

नदी के किनारे वह वीर स्त्री किसी देवी के समान खड़ी प्रतीत होती थी। उसकी सब सखियां भी उसे वीर देवी के नाम से ही पुकार कर बातें कर रही थीं ॥४४॥

तारकाभिरिवेन्दुश्रीरप्सरोभिः शचीव सा ।
सखीभिर्वेष्टिताऽराजत् त्रिलोकीरमणीमणिः ॥४५॥

वह तीनों लोकों की सुन्दरी स्त्रियों से भी अधिक सुन्दर लग रही थी । उसकी सब सहेलियों ने उसे ऐसे घेर रखा था जैसे वह तो चान्द की दिव्य ज्योति थी और उसकी सहेलियां तारिकाएं थी, अथवा उसकी सहेलियां तो अप्सरायें थी, और उनसे घिरी हुई वह स्वर्ग की महारानी इन्द्राणी थी ।

सुन्दरं देहमाश्रित्य दिव्यं चातिमनोहरम् ।
यथादेवाङ्गना काऽपि भूलोकं द्रष्टुमागता ॥४६॥

वह कोई साधारण स्त्री नहीं थी । मेरा अनुमान है कि वह अवश्य स्वर्ग की कोई अप्सरा होगी जो संसार को देखने की इच्छा से सुन्दरी स्त्री का रूप धारण करके भूलोक पर उतर आई थी ।४६॥

सुन्दर्यः सुस्त्रियः सर्वाः सख्यश्च रूपभासुराः ।
कृष्णवर्णास्तदग्रे ता निस्तेजस्का इवाभवन् ॥४७॥

उसकी सब सहेलियां अत्यन्त सुन्दर थीं। उन सब के चेहरे यौबनसुलभ सुन्दरता के कारण चमक-दमक रहे थे । पर उस सती स्त्री के अनुपम लावण्य के सामने उन सब सुन्दरियों के चेहरे काले लग रहे थें और उनकी सब चमक न जाने कहां गायब हो गई थी ॥४७॥

सत्याः संवीक्ष्य सौन्दर्यं जितस्तन्मुखतेजसा ।
जलान्तः प्रतिमाव्याजात्सूर्योऽकम्पत लज्जया ॥४८॥

उस सती स्त्री के तेजस्वी चेहरे की तुलना में अपनी चमक

को हीन जान कर सूर्य भी लज्जा वश नदी के पानी में छिप कर कांप रहा था ।।४८।।

देशे देशे तु कामिन्यो देशे देशे कुलस्त्रियः ।
काऽपि दृष्टा न तत्तुल्या शालीनगुणगुम्फिता ।।४९।।

ऐसी स्त्रियां तो प्रत्येक देश में आपको मिल जायेंगी, जो सुन्दर हों और ऊचे कुल की हों । परन्तु विश्वास से कहा जा सकता है कि उसके समान सभ्य, शालीन स्त्री आप को कहीं न मिली होगी ।।४९।।

अदीना रूपसम्पत्तौ समीचीना सुकर्मभिः ।
कुलीना चेष्टितैः पुण्यै र्मुनीनां कन्यकेव सा ।।५०।।

रूप की सम्पत्ति की भगवान ने उस पर वर्षा करदी थी । धार्मिक कार्यों में वह किसी से कम नहीं थी । पुण्य कार्यो में उसका मन लगता था । वह तो किसी मुनि की कन्या के समान लगती थी ।।५०।।

धनाढ्यापि निरुन्मादा युवत्यपि न चञ्चला ।
सुन्दरी चाप्रमत्ता सा महामहिमशालिनी ।।५१।।

उसका घर धन-धान्य से परिपूर्ण था, पर सब कुछ इतना होने पर भी वह गर्व नहीं करती थी । वह युवती थी, पर उसमें यौवन सुलभ चञ्चलता नही थी । वह सुन्दरी थी, पर उसे अपने सौन्दर्य पर अभिमान नहीं था । उसकी महिमा अवर्णनीय है ।।५१।।

हृदयं सदयं तस्यास्तथा वाचः सुधामुचः ।
प्रशस्तं चानिशं चारुवदनं सदनं श्रियः ।।५२।।

उसका हृदय दया का समुद्र था । उसकी वाणी में बड़ी मिठास थी । उसके सुन्दर चेहरे का लावण्य वर्णनातीत था। उसकी दिन-रात प्रशंसा करते रहो फिर भी थोड़ी होगी ॥५२॥

केवलं दर्शनं तस्याः सर्वसौख्यप्रदायकम् ।
फलं तत्सङ्गतेः किं नु भविष्यति न विद्महे ॥५३॥

उसके तो केवल दर्शन कर लेने से ही सब सुख प्राप्त हो जाते थे। यदि किसी को सौभाग्य से उसकी सङ्गति भी प्राप्त हो जाये, तो कह नहीं सकते कि उसको क्या क्या न प्राप्त हो सकता होगा ॥५३॥

सदा पुण्या सदाचारैर्विचारैः शास्त्रसंगतैः ।
संलग्ना धर्मकृत्येषु देवता सा न मानुषी ॥५४॥

उसका व्यवहार सदा पुण्यात्माओं जैसा होता था । उसके विचार धर्म-शास्त्रों के अनुरूप थे । धर्मकार्यों में ही सदा लगी रहती थी। वह कोई साधारण स्त्री नहीं थी । वह तो सच ही कोई देवी थी ।५४॥

पतिं शुश्रूषते भक्त्या नित्यं तमनुगच्छति ।
शिरोमणिः कुलस्त्रीणां सा रमा न रमा रमा ॥५५॥

वह सदा पति की प्रेम से पूजा करती थी । और उसी का अनुसरण करती थी । कुलीन स्त्रियों में वह शिरोमणि थी। आप भले ही लक्ष्मी को लक्ष्मी कहें, पर वास्तव में लक्ष्मी तो वह स्त्री ही थी ॥५५॥

शतचन्द्रसमं तस्या देहाच्चारुसुशीतलम् ।
कानकं प्रासरत्प्रोद्यत्तेजोमण्डलमद्भुतम् ॥५६॥

उसके शरीर से निकल कर एक अद्भुत तेज दशों दिशाओं में फैल रहा था जो सब के तन मन को शीतलता प्रदान कर रहा था। इतनी शीतलता सैंकड़ों चान्दों की किरणों से भी प्राप्त नही होती ॥५६॥

स्त्रीरत्नं तादृशं गर्भे यतोऽनर्घमधारयत् ।
पृथिवी रत्नगर्भेति नूनं सार्थवती ततः ॥५७॥

पृथ्वी को हम लोग "रत्नगर्भा" कहते हैं, वह इस लिये कि पृथ्वी ने उस जैसे स्त्रीरत्न को अपने अन्दर (गर्भ में) धारण किया हुआ था ॥५७॥

कथावार्ताप्रसङ्गे सा यद्याविरकरोत् स्मितम् ।
शारदी चन्द्रिका चाभूत् कृष्णवर्णाऽतिधूसरा ॥५८॥

दूसरों से बातें करते करते यदि कभी उसके मुख पर मुस्कराहट की रेखा फैल जाती थी तो उसकी शुभ्र श्वेत झलक के सामने शरत्काल के चन्द्रमा की चान्दनी भी फीकी एवं मलीन सी लगती थी ॥५८॥

अशृणोत्तन्मुखाद् यस्तु निःसृतं मधुरं ध्वनिम् ।
वीणानादः कटुस्तस्य कर्कशश्च पिकस्वरः ॥५९॥

जब बातें करते समय उसके मुंह से भी मीठे रसीले बोल निकलते थे तो सितार की तारों से निकले हुए मधुर स्वर और कोयल की मीठी ध्वनि कड़वी लगती थी ॥५९॥

स्वर्गलोकस्थितां लक्ष्मीं कथं पश्यन्तु मानवाः ।
इति चिन्तापरो विष्णुर्लक्ष्मी माहूय चोक्तवान् ॥६०॥

एक बार भगवान् विष्णु के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ

कि लक्ष्मी देवी तो सदा स्वर्ग में मेरे पास रहती हैं । यदि कोई मनुष्य उनका दर्शन करना चाहे, तो कैसे करे ।।६०।।

भूमिं गच्छ स्वरूपेण वीरदेव्या वरातने ।
द्रष्टारो मानवाः सर्वे नष्टपापा भवन्तु ते ।।६१।।

यह सोच कर उन्होंने भगवती लक्ष्मी को बुला कर कहा, हे देबी, तू वीरदेवी का रूप धारण करले और फिर भूलोक में चली जा । तुम्हारा दर्शन करके सारे भूलोक वासी पापों से मुक्त हो जाएंगे ।।६१।।

लक्ष्मीर्विश्वप्रभोर्विष्णो राज्ञया भक्तवत्सला ।
भुवं सम्प्रेषयामास निजां छायामनाविलाम् ।।६२।।

लक्ष्मी देवी तो आगे ही भक्तवत्सल थीं, अर्थात् उन्हें अपने भक्त बड़े प्यारे थे । जब तीनों लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु ने उन्हें स्वयं भूलोक में जाने को कहा तो लक्ष्मी ने अपनी ही पवित्र तथा सुन्दर छाया को पृथ्वी पर भेज दिया ।।६२।।

वीतरागभयक्रोधा साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपिणी ।
पुण्यश्लोका महादेवी वीरदेवी शुभानना ।।६३।।

इस लिये सुन्दर शरीर वाली पुण्यश्लोका वीरदेवी साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप ही थी जिसको न कभी किसी पर क्रोध आता था न वह किसी से डरती थी ।।६३।।

स्थितप्रज्ञा महापुण्या पवित्रा पुण्यसङ्ग्रहा ।
अन्तः पुण्या बहिः पुण्या पुण्यात्मा पुण्यदर्शना ।।६४।।

उसका अन्तरात्मा बहुत ही पवित्र था । उसका हृदय तथा शरीर दोनों पवित्र थे । उसका दर्शन करना भी पुण्यदायक था । स्थितप्रज्ञा तथा पुण्य प्राप्त करने वाली तो वह थी ही ।।६४।।

असन्तप्ता हि दुःखेषु सुखेषु विगतस्पृहा ।
परद्रोहपरद्रव्यपरधान्यपराङ्मुखा ।।६५।।

दुःखों से वह घबराती नहीं थी और सुख प्राप्त करने को उसकी कोई विशेष स्पृहा नहीं थी । न तो वह किसी से द्रोह करती थी, न पराई सम्पत्ति की उसे किसी प्रकार की चाह थी ।।६५।।

परोक्षे च समक्षे च सर्वेषां हितकारिणी ।
न नारी तद्विधा दृष्टा कुत्रापि चकलौमया ।।६६।।

वह सब की हितकारिणी थी, चाहे दूसरे उसके द्वारा किए जा रहे कार्यों को देख रहे हों या न देख रहे हों। वैसी सती नारी मैंने कलयुग में कहीं नहीं देखी ।।३६।।

स्वतः पुण्या स्वतः स्वच्छा स्वतः शुद्धा स्वतोऽनघा ।
गङ्गा ब्रूते कदाऽऽगत्य मामेषा पावयिष्यति ।।६७।।

वह स्वभाव से पवित्र थी, स्वभावतया स्वच्छ थी, शुद्ध थी तथा पुण्यात्मा थी । उसमें इतनी पवित्रता थी कि उसे देख भगवती गंगा के मन में भी यह इच्छा जाग उठती थी कि यह पुण्यात्मा स्त्री मेरी धारा में स्नान करके मुझ को पवित्र कर दे ।।६७।।

पलायते तु दुर्बुद्धिः सत्यं वाचि प्रवर्त्तते ।
तद्दर्शनोत्थपुण्याच्च मतिर्धर्मे प्रजायते ।।६८।।

उसके दर्शन करने से ही दुष्टता, दुर्बुद्धि आदि दोष नष्ट हो जाते थे । दर्शक की वाणी सच के सिवाय कुछ नहीं बोलती थी और धर्म कार्यों की प्रेरणा ही होती थी ।।६८।।

तत्पादस्पर्शमात्रेण नष्टपापा भवन्ति ते ।
सन्ति येऽपि खला दुष्टा नीचा वा पापिनो जनाः ।।६९।।

जो लोग दुष्ट नीच या पापी थे उनके सभी पाप उस समय घुल जाते थें जब वे केवल उसके पांव को छू लेते थे ।।६९।।

शान्तिदा यमुनातुल्या गङ्गेवाघविनाशिनी ।
गोदावरीसमा पुण्या चन्द्रभागेव शीतला ।।७०।।

उसका दर्शन इतना शान्तिदायक था जितना यमुना नदी का पानी। उसके दर्शन से पाप इस तरह धुल जाते थे जैसे गंगा के पानी से। गोदावरी नदी के समान वह पुण्यदायिनी थी और चन्द्रभागा नदो के जल के समान उसका दर्शन ठडक पहुंचाता था ।।७०।।

अयं निजः परो वाऽसाविति विस्मृत्य सर्वदा ।
हितं चकार सर्वेषां विश्वप्रेमपराऽनिशम् ।।७१।।

सारे विश्व के प्राणियों से उसका प्रेम था, वह तो सबका हित चाहती थी। दूसरों का हित करते समय वह अपने पराये का भेद नहीं जानती थी ।।७१।।

कुलधर्मे कुलस्त्रीभिः कारुण्ये सज्जनैरपि ।
शुचित्वे चाभिजातैः सद् बान्धवैः सा प्रशंसिता ।।७२।।

वह स्त्री अच्छे कुल के आचारों वाली थी, इस लिए सव प्रतिष्टित कुलीन स्त्रियां उसकी प्रशंसा किया करती थीं। वह दयावती थी, इस कारण सभी सज्जन स्त्री-पुरुष उसका आदर करते थे तथा पवित्रता और सदा चारिणी होने के कारण सब वन्धुजन उसकी प्रशंसा करते थे ।।७२।।

पतिव्रता पवित्रा च प्रवीणा पुण्यदर्शना ।
पुण्यात्मा पञ्चभिः पुण्यैः पकारैः पाविता परम् ।।७३।।

वह पतिव्रता थी, पवित्र थी, प्रवीण थी, पुण्यदर्शना थी; पुण्य आत्मा

थी। इस प्रकार अपने पांच गुणों के पहले पांच अक्षर पकारों से प्रारंभ हो जाने के कारण सारे संसार में प्रसिद्ध थी ॥७३॥

अभिजनपरिचरणरता प्रियवचनाढ्या सुशीलसम्पन्ना ।
अप्रियवचनदरिद्रा क्वचिदपि दृष्टा न
तादृशी देवी ॥७४॥

अपने बन्धु जनों की सेवा करने के कारण, अपनी प्यारी बोली के कारण, शीलवती होने के कारण किसी को कड़वी बोली से न बुलाने के कारण, वह स्त्री संसार भर में अद्वितीय थी ॥७४॥

दोर्भ्यां तितीर्षति तरङ्गवतीभुजङ्ग-
मादातुमिच्छति करे हरिणाङ्कबिम्बम् ।
मेरुं लिलङ्घयिषति ध्रुवमेव तस्या
यः सद्गुणाङ्गदितु मुद्यममादधाति ॥७५॥

उस स्त्री में असंख्य गुण थे। उनको वर्णन करना कोई आसान काम नहीं। उसके गुण गिनने वाले को तो निराश ही होना पड़ेगा, उस आदमी की तरह जो समुद्र को अपनी बाहों से तैर कर पार करना चाहता हैं, या जो चांद को अपने हाथों से पकड़ना चाहता हो या सुमेरु पर्वत को अपनी टांगों द्वारा चल कर पार करना चाहता हो ॥७५॥

उक्त्वैवं नारदः श्रीमान् हर्षितः पुनरब्रवीत ।
मुनयो हे महाभागा वदामि किमतः परम् ॥७६॥

जब श्री नारद जी ऋषियों को यह सारी बातें सुना रहे थे तो बहुत प्रसन्न होकर उनको कहने लगे कि हे ऋषि महात्माओं, अब आप मुझ से और क्या-क्या पूछना चाहते हैं ? ॥७६॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा देवर्षेः सत्यवादिनः ।
मुनयो भक्तिनम्रास्ते ह्यब्रुवन् श्रवणोत्सुकाः ॥७७॥

देवर्षि नारद सब सत्य ही तो कह रहे थे । उनके वचन सुनकर ऋषियों ने भक्ति पूर्वक उनको नमस्कार किया और फिर उन्हें पूछा ॥७७॥

देवर्षे तादृशी नारी दृष्टा कुत्र त्वया प्रभो ।
अवदन्नारदो युष्मान् विस्तरेण वदाम्यहम् ॥७८॥

हे देवर्षि, इस प्रकार की नारी को आपने कहां देखा था ? यह बताइये । तब श्री नारद जी बड़े प्रसन्न हुए और उनको कहने लगे कि मैं आपको विस्तार से सारी कथा सुनाता हूं ॥७८॥

तौषीनाम नदीतीरे स्थिता जाम्बवती पुरी ।
मन्दिराणां पुरी नाम्ना विख्याता जगतीतले ॥७९॥

संसार में एक नदी है जिसको "तवी" नाम से पुकारते हैं । उसके किनारे जाम्बवती पुरी है, जिसको "जम्मू" भी कहते हैं, और वह पुरी "मन्दिरों की पुरी" के नाम से सारे संसार में विख्यात है ॥७९॥

तत्रैकदा नदीतीरे नवरात्रदिनेषु च ।
सद्य:स्नातां सरोजाक्षीं नवोढां दृष्टवानहम् ॥८०॥

वहां पर एक बार नवरात्र के पवित्र दिनों में उस कमल नयनी स्त्री को मैंने देखा । उस समय वह स्नान करके नदी से बाहर निकल चुकी थी । उसका विवाह हुए भी बहुत दिन नहीं हुए थे ॥८०॥

पूर्णषोडशवर्षां ताम् पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
तारुण्यपादपात्सद्य: स्फुटितां कलिकां नवाम् ॥८१॥

उस समय उसकी आयु पूरे सोलह साल की थी । उसका चेहरा पूनम के चान्द की तरह दमक रहा था । ऐसे प्रतीत होता

था, कि वह तो एक नई कली के समान है, जो यौवन के वृक्ष की टहनी से अभी-अभी प्रस्फुटित हुई है ।।८१।।

स्रष्टुर्विलक्षणां सृष्टिं दृष्ट्वा संचकितोऽभवम् ।
लावण्यवारिधेरुच्चैरुच्छलद्वीचिकामिव ।।८२।।

वह सौन्दर्य के समुद्र में ऊंची उठती हुई लहर के समान लग रही थी । नारद जी ने कहा कि मैं तो उसे देख कर हैरान हो गया कि विधाता ने उसकी विलक्षण सुन्दर मूर्त्ति को कितने यत्नों के पश्चात् बनाया होगा ! ।।८२।।

स्मितस्मेरं मुखं तस्याः किञ्चिदञ्चलसम्वृतम् ।
लोलाक्षं वीक्ष्य जायन्ते मुनयोऽप्यव्यवस्थिताः ।।८३।।

उसका सुन्दर चेहरा आञ्चल से थोड़ा ढका हुआ था । मुखड़े पर खेलती मधुर मुस्कान सब का मन मोह लेती थी । उसकी आंखों की मस्ती और चञ्चलता देखकर ऋषि मुनियों का मन भी डोल जाता था ।।८३।।

अन्यत्तद्रूपमाधुर्यमन्यत्तारुण्यसौष्ठवम् ।
नासीत् सौन्दर्यमूर्त्तिः सा सृष्टिः साधारणी विधेः ।।८४।।

उसके मधुर रूप की सुन्दरता विलक्षण थी । उसके यौवन की उठान भी अद्भुत थी । प्रतीत होता था कि उसको बनाते समय विधाता ने उसे साधारण स्त्री न बना कर अद्भुत रूपवती बनाना चाहा होगा ।।८४।।

जगज्जैत्रं तु सौन्दर्यं नेत्रानन्दं च यौवनम् ।
तादृशं न मया दृष्टं रूपं चेतोहरं भुवि ।।८५।।

सौन्दर्य उसका इतना मोहक था कि केवल उसे एक बार देखने भर से सब लोग मुग्ध हो जाते थे । उसके यौवन को देख नेत्रों

को वड़ा आनन्द मिलता था । मैंने इतना मनमोहक रूप संसार में पहले कहीं कभी नहीं देखा था ।।८५।।

जितचन्द्रं मुखं तस्या नेत्रे खञ्जनगञ्जने ।
दृष्टिस्तस्या: सुधाधारा स्मितं स्वर्गसुधासमम् ।।८६।।

उसके सुन्दर चमकते मुख को देख कर चन्द्रमा की सारी चमक-दमक फीकी पड़ जाती थी । उसके नेत्र खञ्जन नाम के पक्षियों की भान्ति चञ्चल थे। उसकी दृष्टि से अमृत की धारा वहती रहती थी। और उसके चेहरे की मुस्कान के सामने तो अमृत की मिठास को भी हार माननी पड़ती थी ।।८६।।

अपाङ्गवीक्षणं तन्व्या देवानां सोमभाजनम् ।
राक्षसानां सुरापात्रं माध्वीकचषको नृणाम् ।।८७।।

उसके नेत्रों की तिरछी चितवन को देख ऐसे लगता था कि वह मन-मोहिनी युवती देवताओं के लिये सोमरस पीने का पात्र है, या राक्षसों के लिये मधुपात्र है, या अन्य साधारण लोगों के लिये मद्य पीने का प्याला है, जिसे देखते ही नशा चढ़ आता है ।।८७।।

छाया सा कल्पवृक्षस्य नन्दनोद्यानवल्लरी ।
तारुण्यस्मेरसौन्दर्यद्रुमाङ्कुरितमञ्जरी ।।८८।।

वह कल्प वृक्ष की छाया के समान शान्ति देती थी । स्वर्ग में जो नन्दनवन है, उसके किसी सुन्दर वृक्ष की बेल के समान थी। ऐसे प्रतीत होता था कि तारुण्य (यौवन) के वृक्ष से एक नई कली निकल आई है ।।८८।।

प्रहृष्टस्तन्मुखामोदपरिष्वङ्गसुगन्धित: ।
वरीवर्ति सरीसर्ति नरीनर्ति समीरण: ।।८९।।

उसके मुंह के श्वासों से एक विलक्षण प्रकार की सुगन्ध

निकल कर चारों ओर हवा में फैल रही थी । उस सुगन्ध को प्राप्त करके प्रातःकाल की शीतल वायु धीरे-धीरे बहती हुई ऐसे लगती थी, कि प्रसन्नता के कारण नाचकूद करती चल रही है ॥८९॥

कान्तिं तस्याः शरीरस्य पश्येद् यदि कदाचन ।
भूयाद् विजितकामोऽपि मुग्धः साक्षान्महेश्वरः ॥९०॥

कहते हैं कि महादेव शिवजी ने कामदेव को जीत लिया था, फिर उन्हें काम कैसे व्याप्त हो सकता है ? पर यदि भगवान शिव स्वयं आकर उस कामिनी के शरीर की झलक को एक बार देख लेते तो वह भी मोहित हुए वगैर न रह सकते ॥९०॥

तद्वक्षस्यलुठन्मत्तो मुक्ताहार इतस्ततः ।
मुक्तानामप्यवस्थेयमन्ये के कामकिङ्कराः ॥९१॥

उसके वक्षस्थल पर मुक्ता हार (मोतियों का हार) प्रसन्नता की मस्ती में इस प्रकार झूल रहा था जैसे कोई नशे बाज इधर-उधर धक्के खा रहा हो । यदि मुक्ताओं की अर्थात् मोतियों की (अथवा उन आत्माओं की जो मुक्त हो चुकी हैं) ऐसी दशा हो जावे तो दूसरे लोगों का क्या हाल होता होगा, जिनको कामदेव सरलता से वश में कर लेते हैं ? ॥९१॥

समाकर्ण्य गिरं तस्याः पिकाः पीयूषवर्षिणीम् ।
अनुकुर्वन्ति तद्वाणीमाधुर्यं स्वकुहूरवैः ॥९२॥

उसकी मीठी वाणी सुनकर ऐसे लगता था जैसे अमृत की बर्षा हो रही है उसकी मधुर वाणी की नकल करने का अभ्यास करती हुई कोयलों के झुण्ड आज भी इधर-उधर

कुहू-२ करते हुए देखे जा सकते हैं। पर कोयलों की बोली में वह मिठास आज तक नहीं आई ॥९२॥

स्नात्वा स्नात्वा सुधासिन्धौ स्नात्वा क्षीरोदधौ पुनः ।
चन्द्रज्योत्स्नैव सा तन्वी वनितारूपधारिणी ॥९३॥

उसके शरीर का रंग चान्द की ज्योति के समान स्वच्छ था। वह चान्द की ज्योत्स्ना ही तो थी, जो स्त्री का रूप धारण करके आकाश से पृथ्वी पर उतर आई थी। उसके पहले चान्दनी ने सैकड़ों वार अमृत के श्वेत समुद्र में स्नान करके फिर कई वार क्षीर समुद्र में भी नहाया होगा। तब चान्दनी ने उस सुन्दरी का रूप धारण किया होगा ॥९३॥

अन्तर्भ्रान्तालि कि पद्मं किं तल्लोलेक्षणं मुखम् ।
इति दोलायते चित्तं प्रेक्षकानां मुहुर्मुहुः ॥९४॥*

उस चञ्चलनयनी के मुख को देख कर लोग भ्रम में पड़ जाते थे कि यह उसका चेहरा है कि कमल का खिला फूल, जिस पर भौंरे मंडरा रहे हैं ॥९४॥

तस्याः शंके ध्रुवं लीलारोचितभ्रूलते मुखे ।
आसज्य राज्यभारं स्वं सुखं स्वपिति मन्मथः ॥९५॥*

मेरा विचार है कि भगवान कामदेव ने लोगों के मन को वश में कर लेने का काम कमान के समान तिरछी उसकी भंवों को सौंप दिया होगा और स्वयं कामदेवता निश्चिन्त होकर सो गये होंगे ॥९५॥

न हयैर्न च मातङ्गैर्न रथैर्न च पत्तिभिः ।
तया त्वपाङ्गदृष्ट्यैव विजितं भुवनत्रयम् ॥९६॥*

तीनों लोकों के हृदय पर विजय प्राप्त करने में उसे न तो

घोड़ों की, न हाथियों की, न रथों की और न ही किसी सेना की आवश्यकता पड़ी। यह सारा काम तो उसकी तिरछी चितवन ने क्षण भर में कर दिखाया ॥९९॥

उत्कण्ठयति मेघालिर्यथा वृन्दं कलापिनाम्।
तथोदकण्ठयद् यूनां मनांसि मदिरेक्षणा ॥९७॥

उसकी काली मतवाली आंखें युवकों का मन उसी प्रकार मोह लेती थीं, जिस तरह काले-काले बादलों की पंक्ति वर्षाऋतु में मोरों के मन को मोहती है ॥९७॥

बिम्बौष्ठात्प्रास्फुरत्तस्याः शब्दध्वनिर्विनिर्गतः।
निर्झरः स्यन्दते रक्तमणिक्यविवराद्यथा ॥९८॥

उसके लाल होठों से शब्दों की धारा इस तरह प्रवाहित होती थी जैसे लाल माणिक्य के बने झरने से कल-कल करते शीतल जल की श्वेत धारा बह रही हो ॥९८॥

सुन्दरं वदनं तन्व्याः संवीक्ष्य लज्जयावृतम् ।
कमलं सलिले मग्नं चन्द्रो व्योम्नि पलायितः ॥९९॥

उसके मुख की सुन्दरता को देख कर कमल के फूल इतनी अधिक लज्जा अनुभव करने लगे कि लज्जावश सरोवरों के पानी में जा डूबे, और चान्द तो इतना अधिक लज्जित हुआ कि शर्म के मारे भागते-भागते उसने आकाश में जा कर ही दम लिया ॥९९॥

उपासितो जले सूर्यः तपस्तप्तं दिने दिने।
तुलना तन्मुखस्याप्ता कमलेन मनाक् तदा ॥१००॥

उसके चेहरे की कोमलता तथा मनमोहिनी सुन्दरता को देखकर कमल फूल के मनमें विचार उठा कि मैं भी उतना ही

सुन्दर बन के दिखाऊं जितना मन-मोहक उसका मुखड़ा है। इसलिए बेचारा कमल सारा-सारा दिन जल में खड़ा रहता है जैसे घोर तपस्या कर रहा हो और साथ ही सूर्य भगवान की उपासना करता है कि भगवान् मुझे भी उसके मुखड़े के समान ही सुन्दर बना दो। पर कमल का फूल इतनी कठिन तपस्या के बाद भी उसके मुख की सुन्दरता का अंश मात्र ही प्राप्त कर सका ॥१००॥

वीक्ष्य बिम्बाधरं तस्या गता भीता सुधा दिवम् ।
जाता म्लानमुखी द्राक्षा शर्करा चाश्मतां गता ॥१०१॥*

अमृत, द्राक्षा (दाख), चीनी (मिश्री), यह तीनों बड़े ही मीठे पदार्थ हैं। पर जब इन तीनों ने अपनी मिठास के साथ उसके अधर रस के माधुर्य की तुलना की तो अपनी मिठास को घटिया जान कर अमृत तो पृथिवी छोड़ कर स्वर्ग में चला गया। दाख का रंग भी काला स्याह फिर गया, और मिश्री तो निरी पत्थर की मूर्त्ति सी बन गई ॥१०१॥

सत्याः संवीक्ष्य सौंदर्यं संसारासारतां हृदि ।
विमृशन्तः कियन्तस्ते सन्तः सन्ति भुवस्तले ॥१०२॥

सन्त महात्मा कहते हैं कि "यह संसार मिथ्या है, असार है। इसमें सार वस्तु कोई नहीं"। पर यदि वे सन्त महात्मा उस सती स्त्री के अनुपम सौन्दर्य को देख लेते तो उन्हें अपनी राय अवश्य बदलनी पड़ती। क्योंकि जिस संसार में इतना सौन्दर्य है वह असार कैसे हो सकता है ? ॥१०२॥

तस्या विलोलधम्मिलमल्लिकामोदवासिताः ।
अद्यावधि सुखं वान्ति सौरभ्यसुहृदोऽनिलाः ॥१०३॥

आपको जब कभी धीरे-धीरे बहती बयार (वायु) बड़ी

खुशबूदार प्रतीत हो तो समझ लें कि इस वायु ने मल्लिका फूलों की गध से महकते हुए उसके लहराते घुंघराले बालों को कभी न कभी अवश्य स्पर्श कर लिया होगा, जिससे वायु में इतनी सुगन्ध भर गई है कि आज तक भी वह खुशबू कायम है ।।१०३।।

मुनिमानसमोहिन्या वीक्ष्य सौन्दर्यमाधुरीम् ।
मन्दवर्णाऽप्यपर्णाऽभूद् लक्ष्मीर्वैलक्ष्यमागता ।।१०४।।

ऋषि-मुनियों के मन को मोहने वाले उसके अपार सौन्दर्य को देखकर अपर्णा मन्दवर्णा हो जाती थी, अर्थात् पार्वती देवी के सुन्दर चेहरे का रंग फीका पड़ जाता था । भगवती लक्ष्मी भी इतनी सुन्दर न लगती थी ।।१०४।।

जाताऽदम्भा च रम्भाऽपि तस्याः साम्ये स्थिता सती ।
घृताची च ह्रियाचीरच्छादितास्याऽभवद् ध्रुवम् ।।१०५।।

स्वर्ग की सब से सुन्दर अप्सरा रभा भी अपने सौन्दर्य पर बड़ा इतराती थी । पर उसके सामने आते ही रंभा का सारा गर्व उड़न छू हो जाता था और भगवती इन्द्राणी देवी तो उसे देखते ही अपना मुंह कपड़े से ढांक लेती थी ।।१०५।।

धात्रा निर्माय यत्नेन शङ्के हरिणलोचना ।
पृथिव्यां देवकन्यैका स्वर्लोकादवतारिता ।।१०६।।

मन में यही विचार आता है कि बिधाता ने बड़े प्रयास के के पश्चात् किसी सुन्दरी देवकन्या का निर्माण करके उसे स्वर्ग से पृथ्वी पर उतार दिया होगा कि लोग विधाता की कारीगरी की प्रशंसा करें ।।१०६।।

ईषद्रक्तकपोलेन मन्मथस्तन्मुखेन्दुना ।
नर्त्तितभ्रूलतेनालं विजेतुं भुवनत्रयम् ।।१०७।।*

उसके चान्द जैसे मुखड़े, लाल-लाल कपोलों, तिरछी

कमान जैसी काली भवों को देखकर काम देवता को विश्वास हो गया कि अब तीनों लोकों को विजय करना मेरे लिए बहुत ही आसान हो गया ॥१०७॥

मञ्जुलं वदनं तस्या निर्माय यत्नतो विधिः ।
सौन्दर्यपूरितं वीक्ष्य तापितः स्मरवन्हिना ॥१०८॥

ब्रह्मा जो जब उसके सुन्दर चेहरे का निर्माण कर चुके, तो उसके सौन्दर्य को देख उन्हें ऐसा लगा कि स्वयं उनका अपना शरीर ही कामाग्नि से झुलस रहा है। फिर क्या करते ? ॥१०८॥

तस्या वचः सुधावापीं नाभिं सरश्च निर्ममे ।
ओष्ठं रसघटीं कृत्वा जङ्घां रम्भां समाकरोत् ॥१०९॥

अपनी कामाग्नि को शान्त करने के लिए उन्होंने उसके होठों को अमृतरस से भरे घड़ों का रूप दे दिया। उसकी नाभि को सरोवर की गहराई दे दी। उसकी जंघांओं को कदलीस्तम्भों की शीतलता दे दी तथा उसकी वाणी को अमृत जलपूर्ण बावली जैसा मीठा तथा शीतल बना दिया ॥१०९॥

अतनोन्मानसामोदं तद्वाङ्माधुर्यवैभवम् ।
घर्मसन्तप्तकायस्य यथा वातः सुशीतलः ॥११०॥

जिस प्रकार गर्मी से झुलस रहे किसी मनुष्य के शरीर को अत्यन्त ठण्डी हवा शीतल कर देती है, उसी प्रकार उसके मुख से निकली मीठी वाणी सब को शीतलता प्रदान करती थी ॥११०॥

निष्कलङ्कं विधोर्बिम्बं तन्वंग्यास्तु तदाननम् ।
नेत्रयुग्मं विलोलाक्ष्या निस्तोयं शफरद्वयम् ॥१११॥

उस सुकुमार शरीर वाली बाला का मुखड़ा पूनम के चान्द सा चमकता था, पर चान्द से तुलना करना ठीक नहीं है, क्योंकि

चान्द में दाग होते हैं, पर उसके चेहरे पर तो दाग का नामोनिशान नहीं था। इसी प्रकार उसकी चञ्चल आंखें उन मछलियों की तरह अस्थिर थीं जिनको कभी जल की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ॥१११॥

पीत्वा कर्णपुटैस्तस्या वाणीं माधुर्यमञ्जुलाम् ।
तद्रसज्ञाः सुराः सर्वे न पिवन्ति सुधामपि ॥११२॥

उसकी वाणी में इतना मीठा रस भरा था कि जब उस मिठास को देवताओं ने अपने कानों द्वारा अनुभव किया तब से उन्होंने अमृत पीना ही छोड़ दिया और उसकी मीठा बाणी सुनने को लालायित रहने लगे ॥११२॥

राकासुधाकरास्यां तां वीक्ष्य मोहितमानसाः ।
लभन्ते योगिनो लौल्यमन्येषां तु कथैव का ॥१२३॥

पूर्णमासी के पूरे चान्द की भान्ति प्रकाशमान उसके सुन्दर चेहरे को देखकर बड़े-बड़े योगी और सिद्ध पुरुषों का मन भी डावांडोल हो जाता था। फिर साधारण पुरुषों की तो बात ही जाने दीजिए। उनकी दशा कैसी हो जाती होगी, इसका अंदाजा आप ही लगाइए ॥११३॥

कृत्वैवं नारदः प्राज्ञस्तस्या रूपनिरूपणम् ।
अवदत्तान्मुनीन्वार्त्तामितांस्तत्र समागतान् ॥११४॥

भगवान् नारद जी जब उसके रूप का इतना वर्णन कर चुके, तो वहां आए हुए ऋषि मुनियों की विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए कहने लगे ॥११४॥

एकाऽहं भ्रमन्विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
ज्योतिश्चक्रं नभश्चापि ससूर्यशशितारकम् ॥११५॥

हे मुनि महात्मा लोगो, मैं एक समय की कथा आप को सुनाता हूं। चर तथा अचर विश्व में घूमता हुआ सब दिशाओं की तथा आकाश के अनेक तारागण और सूर्य तथा चन्द्र लोक की सैर करके मैं भूलोक की ओर जा रहा था तो देखा कि ॥११५॥

साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं नानालोकसमाकुलम् ।
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तमिलावर्त्तं गतस्तदा ॥११६॥

उस पृथ्वी के गोले पर बड़े-बड़े पहाड़ थे, गहरे समुद्र थे, उनमें द्वीप भी अनगिनत थे, और कई प्रकार के लोग वहां रहते हुए मैंने देखे। फिर वहां से मैं ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त और इलावर्त्त भी देख आया ॥११६॥

यातोऽहं भारतं वर्षं जम्बूद्वीपस्थितं पुनः ।
पुनश्च बाल्हिकानान्ध्रान् कोसलान्निषधाङ्गतः ॥११७॥

वहां की सैर के पश्चात् मैं जम्बू द्वीप में स्थित भारतवर्ष में जा पहुंचा. जहां मैंने पहले बाल्हीक, फिर आन्ध्र, फिर कोशल और फिर निषध प्रदेशों की सैर की ॥११७॥

ततश्च मालवांश्चापि महाराष्ट्रान् गतोऽभवम् ।
मागधांश्च पुलिन्दांश्च तथा च यदुमद्रकान् ॥११८॥

इन सब देशों में घूम फिर कर मैं मालव देश में, महाराष्ट्र में, और मगध देश में चला गया : फिर पुलिन्द देशमें, फिर यदु और मद्रदेश में जा पहुंचा ॥११८॥

कलिङ्गांश्च तथा बङ्गान् सौराष्ट्रांश्चाप्यहं गतः ।
चन्द्रभागातटं सिन्धोस्तथा गोदां च जान्हवीम् ॥११९॥

वहां से मैं कलिङ्ग देश, बङ्गदेश, सौराष्ट्र में घूमता-घूमता सिन्धुदेश में जा पहुंचा। उधर ही चन्द्रभागा नदी का प्रदेश भी देखा। फिर उधर से मैं उस देश में चला गया, जहां गोदावरी नदी बहती है। वहां से होकर मैं भगवती जाह्नवी नदी (गङ्गा) के तट पर स्थित उस प्रसिद्ध तीर्थ में जा पहुंचा जिसे हरिद्वार कहते हैं ॥११९॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे यद्दृष्टं च तदा मया।
तत्सर्वं भवतामग्रे कथयामि विशेषतः ॥१२०॥

उस दिन हरिद्वार में गंगा के किनारे जो कुछ मैंने देखा, वह सब मैं आपको विस्तार से बताता हूं ॥१२०॥

तीर्थे तत्र हरिद्वारे विप्राः सन्ति तपोधनाः।
पाण्डेया इति विख्याताः सेवन्तेऽभ्यागतान्सदा ॥१२१॥

हरिद्वार के पवित्र तीर्थ स्थान में कुछ यशस्वी ब्राह्मण रहते हैं, जिनको पाण्डे कहकर पुकारते हैं और जो हरिद्वार में आने वाले अतिथियों की देखभाल करते हैं ॥१२१॥

एकस्मिंश्च गृहे तत्र पाण्डेयप्रवरस्य तु।
दृष्टो मया नरः सौम्यः शुभ्रैर्वस्त्रैः सुवेष्टितः ॥१२२॥

उस दिन मैंने वहां क्या देखा कि एक पाण्डे के घर सुफेद वस्त्र पहने कोई पुरुष बैठा है, जिसका शरीर काफी दुर्बल था ॥१२२॥

बलिकीर्णं मुखं तस्य शरीरं दुर्बलं भृशम्।
जराक्षामं तथा सर्वे पलिताश्च शिरोरुहाः ॥१२३॥

उसके बाल सफेद हो चुके थे और वृद्धावस्था के कारण

वह बहुत दुबला पतला लग रहा था। उसका मुंह भी झुर्रियों से भरा था ॥१२३॥

सुवेशेन मुखाकृत्या कुलीनः सुविचक्षणः ।
शिष्टवाक् प्रियभाषी स ब्राह्मणः कोऽपि दृश्यते ॥१२४॥

उसके सुन्दर कपड़ों, प्रभावशाली चेहरे, तथा सभ्य और शिष्ट मीठी बोली से ऐसे प्रतीत होता था कि वह अवश्य ही कोई कुलीन ब्राह्मण होगा ॥१२४॥

पाण्डेयस्य गृहे तत्र गृहीत्वा तस्य सञ्चिकाम् ।
पृष्ठान्यचालयद्विप्रवर्यः कौतुहलावृतः ॥१२५॥

उसने पाण्डे के घर में पड़ी हुई वही को उठा लिया और पृष्ठों को उलटते पलटते हुए यह देखने लगा कि उसमें क्या लिखा है ॥१२५॥

अकस्माद् दृष्टवांस्तत्र पितुर्हस्ताक्षराणि सः ।
द्युतिमन्ति महार्घाणि रत्नानीव क्वचिद् यथा ॥१२६॥

उसने अकस्मात् देखा कि उसके पिता ने भी उस वही में अपने हाथ से कुछ अक्षर लिखे थे, जो उसे इतने सुन्दर लगे जैसे मूल्यवान् रत्न जगमग कर रहे हों ॥१२६॥

देववाण्यां प्रणीतानि पद्यानि सरसानि सः ।
संवीक्ष्य सञ्चिकायां स्वपित्रा संलिखितानि वै ॥
विस्मयेनातुलेनाप्तस्तर्कयामास मानसे ।
आङ्ग्लवागुपदेष्टुर्मे व्यर्थं जन्म गतं किल ॥१२७॥

जब उसने देखा कि उस वही में उसी के पिता ने संस्कृत भाषा में कुछ रसपूर्ण पद्य लिखे हैं तो उसे देखकर बड़ा आश्चर्य

हुआ और वह सोचने लगा कि मैं तो अपनी सारी उम्र अंग्रेजी आदि भाषाएं पढ़ाने में ही नष्ट करता रहा ।।१२७।।

कदाचिदहमप्येवं शक्तः स्यां लेखने यदि ।
देववाणीपदानां तद् धन्यं जन्म भवेन्मम ।।१२८।।

यदि मैं भी इसी तरह संस्कृत के पद्य लिख सकूं, तब तो मेरा जन्म धन्य हो जाए ।।१२८।

एवं विचिन्त्य विप्रेण समागत्य गृहं प्रति ।
प्रयत्नेन समारब्धं कवितालेखनं तदा ।।१२९।।

यह सोचकर वह ब्राह्मण हरिद्वार के जिस घर में ठहरा हुआ था वहां पहुंच कर उसने बड़े यत्न से कविता के कुछ पद्य लिखने शुरू किए ।।१२९।।

ग्रन्थिलं पदवैदुष्यं कविमार्गमजानता ।
कृतानेकप्रमादेन व्यवसाय पुनः पुनः ।।१३०।।

परन्तु वह जानता तो था नहीं, कि संस्कृत वाणी में कविता कैसे की जाती है। फिर कविता करना काम भी बड़ा कठिन है। इसलिए वह लिखते समय बार-बार अशुद्ध लिख जाता था, पर उसने यत्न करना नहीं छोड़ा ।।१३०।।

अंधो वा वधिरो मूकः पंगुर्दंद्रम्यतेयथा ।
तद्वदेव गतिस्तस्ययत्नं कृतवतोह्यभूत् ।।१३१।।

जैसे कोई अन्धा पुरुष ऊबड़ खाबड़ स्थान पर घूमने का यत्न करने लगे या कोई बहरा पुरुष सुनना चाहे, या वह पुरुष दौड़भाग करना चाहे जो अच्छी तरह चल भी नहीं सकता, उसी प्रकार की दशा उस ब्राह्मण की भी हो रही थी जब वह संस्कृत भाषा में कविता लिखने का यत्न कर रहा था ।।१३१।।

कृतापारप्रयत्नोऽपि प्रस्खलंश्चपदे पदे ।
विप्र: कतिपयश्लोकालेखनं कृतवानसौ ॥१३२॥

बार-बार अनेकों अशुद्धियां करते हुए भी वह प्रयत्न करता ही गया। अन्त में उसने जोड़-तोड़ करके थोड़े से श्लोक बना ही लिए ॥१३२॥

गत्वा तस्य पुन: पूज्यपाण्डेयस्य गृहं तदा ।
सञ्चिकायां द्विजस्तत्र लिखितुं ह्युपचक्रमे ॥१३३॥

ऐसा करने के बाद वह ब्राह्मण फिर उसी पाण्डे के घर गया और वहां उसने पाण्डें की बही को उठाकर उसमें अपने बनाए श्लोक लिखने शुरू किए ॥१३३॥

शब्दं यावल्लिखत्येकं कम्पमानकरेण स: ।
तावत्तन्नेत्रगलितो वाष्पविन्दुर्व्यलोपयत् ॥१३४॥

परन्तु अपने कांपते हाथों से उस बही में जब तक वह मुश्किल से एक शब्द ही लिख पाता था उतनी देर में उसके नेत्रों से गिरते हुए आंसू उस शब्द को मिटा देते थे ॥१३४॥

एवं ध्वस्ताक्षरां वीक्ष्य पूज्यपाण्डेयसञ्चिकाम् ।
आदिशत्स समीपस्थं पुत्रं हे पुत्र संल्लिख ॥१३५॥

इस प्रकार जब उस ब्राह्मण ने देखा कि पाण्डे की बही में उसके लिखे अक्षर तो मिटते जा रहे हैं, तो उसने पास ही बैठे अपने पुत्र को कहा कि, हे पुत्र, मुझ से तो लिखा नहीं जा रहा । तुम ही अच्छी तरह साफ-साफ करके लिखते जाओ ॥१३५॥

एवं तेनाभ्यनुज्ञात: पुत्रस्तस्य लिलेख यत् ।
पाण्डेयसञ्चिकायांतु तच्छृणुध्वं समाहिता: ॥१३६॥

उसका पुत्र उसके पास ही बैठा था । पिता जी की आज्ञा

पाकर उसने पाण्डे कीं बही में अपने पिता जी के कहने पर जो कुछ लिखा वह आप ध्यानपूर्वक सुनते जाइए ।।१३६।।

वत्सगोत्रसमुत्पन्नो वसुदेवकुलोद्भवः ।
जम्मूपुर्याः समागत्य चन्द्रनाथो लिखाम्यहम् ।।१३७।।

वहां लिखा था कि मैं वत्स गोत्र के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूं । वसुदेव मेरी जाति है । आज मैं जम्मू नगर से यहां आया हूं और मेरा नाम चन्द्रनाथ है ।।१३७।।

पुण्येभागीरथी तीर्थे हरिद्वारेऽतिविश्रुते ।
पत्न्या सार्धमयाऽऽगत्य बहुधापुण्यमर्जितम् ।।१३८।।

हरिद्वार शहर गंगा का प्रसिद्ध तीर्थ है । यहां मैने अपनी पत्नी के साथ अनेकों बार आकर पुण्य प्राप्त किया है ।।१३८।।

पीतं श्री जाह्नवीतोयं गीतं नाम हरेस्तथा ।
नीतं चायुस्तया सार्धं हर्षोल्लाससमन्वितम् ।।१३९।।

यहां कई बार आ कर मैंने पवित्र गंगा जल पिया, भगवान का नाम स्मरण किया, और पत्नी सहित हर्षोल्लास में दिन व्यतीत किये ।।१३९।।

पुण्योपार्जनमुद्दिश्य नानातीर्थाटनक्रमे ।
कुम्भस्नानं महाकुम्भस्नानं सार्धं तया कृतम् ।।१४०।।

मैंने हरिद्वार में कुम्भ स्नान भी किया । एक बार महाकुम्भ स्नान भी किया था। पुण्य प्राप्त करने के उद्देश्य से और भी कई तीर्थों की यात्रा अपनी पत्नी के साथ की ।।१४०।।

अयोध्या मथुरा काशी पुरी द्वारावती तथा ।
प्रयागादीनि तीर्थानि दृष्टानि च तया सह ।।१४१।।

मैंने अयोध्या देखी। मथुरा तथा काशी भी गया हूं, द्वारिकापुरी और प्रयाग आदि तीर्थों की यात्रा भी अपनी पत्नी को साथ लेकर की ॥१४१॥

वायुयाने तया सार्धं व्योमयात्राऽप्यनुष्ठिता ।
गुलमर्गपहल्गामस्थानदर्शनकांक्षया ॥१४२॥

एक बार अनन्तनाग और गुलमर्ग आदि स्थानों के देखने के लिए काश्मीर तक हवाई जहाज द्वारा आकाश यात्रा भी की है ॥१४२॥

वातानुकूलिते कक्षे रेलयात्राध्वगेनच ।
मुम्बईनगरीं गत्वा कृतं पर्यटनं भृशम् ॥१४३॥

फिर एक बार वातानुकूलित रेल-गाड़ी में बैठ कर पत्नी के साथ बम्बई नगर भी गया हूं और वहां जाकर सारी नगरी की खूब सैर की ॥१४३॥

चौपाद्यां च जुहूतीरेऽनुभूतं भार्यया सह ।
महौदधिजलस्नानक्रीड़ाकौतुकमद्भुतम् ॥१४४॥

वहां चौपाटी और जुहू नाम के प्रसिद्ध समुद्र तटों में घूमा। वहीं पर समुद्र स्नान का अद्भुत आनन्द भी प्राप्त किया ॥१४४॥

भार्या मे वीरदेवीति नाम्ना ख्याता भुवस्तले ।
वीराङ्गनाप्रजाता सा वीरपुत्रप्रसूरभूत् ॥१४५॥

मेरी जीवन संगिनी का नाम था वीरदेवी। वह वीर माता की पुत्री थी और स्वयं भी उसने वीर पुत्रों को जन्म दिया ॥१४५॥

देवेन्द्रनाथोऽथ सुरेन्द्रनाथो वीरेन्द्रनाथश्च नरेन्द्रनाथः ।
राजेन्द्रनाथस्तनयास्तदीयाः कुन्त्या यथा
पाण्डवपञ्चकंवै ।।१४६ ।

एक पुत्र का नाम है देवेन्द्रनाथ, दूसरे का सुरेन्द्रनाथ, तीसरे का नरेन्द्रनाथ, चौथे का वीरेन्द्रनाथ और पांचवें का राजेन्द्रनाथ। इस प्रकार उसके पांच सुन्दर पुत्र, हुए जैसे कुन्ती के पांच पाण्डव पुत्र थे ।।१४६।।

कृष्णा स्नेहलता चास्या द्वे पुत्र्यौ स्नेहपालिते ।
नित्यं तामन्ववर्त्तते स्नेहवात्सलयपूरिते ।।१४७।।

उसकी दो बेटयां भी हैं, जिनके नाम हैं कृष्णा और स्नेहलता। उसने दोनों पुत्रियों का बड़े स्नेह और लाड़ प्यार से पाला था। पुत्रियां भी उसकी सदव स्नेह तथा वात्सल्य से सेवा करती थीं ।।१४७।।

विष्णुदेवं यथा लक्ष्मीः पार्वती च यथा शिवम् ।
यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।।१४८।।

श्री विष्णु भगवान को सेवा जैसे लक्ष्मी किया करती थी तथा पार्वती देवी जैसे शिव भगवान की अनुचारिणी थी या जैसे शची इन्द्र की सेवा करती थी ।।१४८।।

श्री रामं च यथा सीता, श्रीकृष्णं रुक्मिणी यथा ।
मदनं च रतिर्यद्वत् तथा मां साऽन्वसेवत ।।१४९।।

जैसे प्रेमभाव से श्री राम की सेवा सीताभगवती करती थी, श्री कृष्ण जी की रुक्मिणी सेवा करती थी, कामदेव की रति सेवा करती थी, वैसी ही सेवा उसके द्वारा मेरी होती थी ।।१४९।।

गौतमं च यथाहल्या जमदग्निं च रेणुका ।
अरुन्धती वसिष्ठं च कपिलं श्रीमती यथा ।।१५०।।

गौतम ऋषि की सेवा जैसे अहिल्या, जमदग्नि की रेणुका, वसिष्ठ ऋषि की जैसे अरुन्धती, कपिल देव की सेवा जैसे श्रीमती करती थी ।।१५०।।

अनसूया यथा चात्रिं केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्ती च मां तथा सान्वसेवत ।।१५१।।

अत्रि ऋषि की सेवा जैसे अनसूया, महाराज सगर की सेवा केशिनी, नल महाराज की सेवा दमयन्ती जैसे किया करती थी, वैसी ही मेरी सेवा मेरी स्त्री भी करती थी ।।१५१।।

सा पत्नी वीरदेवी मे सखी जीवनसङ्गिनी ।
बन्धून्पुत्रांश्च भर्त्तारम् त्यक्त्वाऽभूत्स्वर्गवासिनी ।।१५२।।

वह मेरी पत्नी वीर देवी, जो एक सखी की भांति जीवन भर मेरे साथ रही, एक दिन सब रिश्ते नाते तोड़कर, अपने पुत्रों, यहां तक की मुझे भी, त्याग कर स्वर्ग चली गई ।।१५२।।

एकादश्यां सिते पक्षे श्रावणे शुक्रवासरे ।
खवस्वङ्कधरावर्षे ख्रीस्ताब्दे सा गतादिवम् ।।१५३।।

उस दिन श्रावण मास का शुक्लपक्ष था । एकादशी तिथि थी, शुक्रवार था, और ईस्वी सन् का 1980 वर्ष था ।।१५३।।

यस्मिन्मासे दिने यस्मिन्माता तस्या गता दिवम् ।
तस्मिन्नेव दिने मासे साऽपि स्वर्गं गता सती ।।१५४।।

संयोग की बात है कि जिस दिन तथा जिस महीने में उसकी माता की मृत्यु हुई थी, उसकी अपनी मृत्यु भी उसी महीने और उसी दिन हुई ।।१५४।।

वीरदेव्या: स्वभार्याया: सम्यक् सम्पादितं मया ।
शास्त्रानुमोदितं कर्म चन्द्रनाथेन तत्परम् ।।१५५।।

अपनी पत्नी वीरदेवी की मृत्यु के पश्चात् मैंने हरिद्वार जा कर शास्त्रानुसार निधनोत्तर कर्म सम्पन्न किये ।।१५५।।

पत्न्या भस्मावशेषास्तु विसृष्टा जान्हवीजले ।
चन्द्रनाथोऽद्य संविग्न: सञ्चिकायां लिखाम्यहम् ।।१५६।।

अपनी पत्नी की भस्म को गंगा जल में प्रवाहित करने के पश्चात् मैं (चन्द्रनाथ) यह शब्द दु:खित होकर पाण्डे जी को बही मे लिख रहा हूं ।।१५६।।

एवं संलिख्य पद्यानि हरिद्वारे शुचाऽऽकुल: ।
दु:खापन्नो हि विप्र: स जम्मू नगरमागत: ।।१५७।।

इस प्रकार इन श्लोकों को पुत्र से लिखवाकर वह दु:खी ब्राह्मण वापिस जम्मू नगर आ गया ।।१५७।।

हरद्वारात्समागत्य गृहं स्वं व्यथयावृत: ।
पत्नीशोकाभिसन्तप्त: सोऽवदद्बाबान्धवान्निजान् ।।१५८।।

हरिद्वार से अपने घर आकर अपनी पत्नी के शोक से सन्तप्त होकर वह अपने बन्धुजनों को कहने लगा ।।१५८।।

दानाद्दीनदरिद्रेषु स्वामिन: सेवयाऽनिशम् ।
प्राप्तपुण्या महाभागा मद्-भार्या गता दिवम् ।।१५९।।

कि मेरी स्त्री तो धर्मचारिणी थी । उसने दीन दरिद्रों को, ब्राह्मणों को, तथा भिखारियों को अनेक वार दान दिया है । उसके सब पाप धुल चुके हैं। इसलिये वह अवश्य स्वर्ग में ही गई होगी ।।१५९।।

भूत्वाद्याहं स्त्रियाहीनोऽनुभवामि पदे पदे ।
न गृहं गृहमित्युक्तं गृहिणी गृहमुच्यते ॥१६०॥

आज वह नहीं रही। मैं पत्नी से विहींन हो गया हूं। मुझे अब बार-बार अनुभव हो रहा है कि केवल घर को ही घर नहीं कहा जा सकता। घर तो वास्तव में तब बनता है जब घर वाली भी साथ हो। विना गुणवती गृहिणी के घर हो ही नहीं सकता। सराय या होटल अवश्य हो सकता है ॥१६०॥

यस्य नास्ति गृहे भार्या सती सुप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१६१॥

जिस पुरुष के घर में पतिव्रता तथा हंस हंस कर मीठी बोली बोलनेवाली नारी न हो, उस पुरुष को चाहिए कि वह किसी सुनसान जंगल में जा रहे, क्योंकि उसके लिए क्या घर और क्या जंगल, दोनों स्थान एक समान हैं ॥१६१॥

तथा भार्याविहीनस्य विज्ञातव्या दशा मम ।
सार्थवाहवियुक्तस्य पथिकस्य भवेद् यथा ॥१६२॥

भार्या से अलग होकर मेरी दशा ठीक उस यात्री जैसी हो गई है, जो साथियों के साथ यात्रा करता २ अचानक उनसे बिछुड़ जाए और, अकेला रह जाने से, रास्ते से भटक जाये ॥१६३॥

जीवितं ममदेहस्य ज्योतिर्मे नेत्रयोर्द्वयोः ।
स्वप्नानां मम सम्राज्ञी कान्ता कुत्र गता मम ॥१६३॥

मेरी देह में वह प्राणों के समान रहती थी । मेरे दोनों नयनों की वह ज्योति थी । मेरे स्वप्नों को रानी थी। पता नहीं वह आज कहां चली गई ? ॥१६ ॥

गता गृहविभूतिर्मे गता सा प्रियवादिनी ।
गता स्वस्वामिनो दासी गता प्राणप्रिया मम ॥१६४॥

वह मीठी वाणी बोलने वाली पता नहीं कहां चली गई ? वह स्वामी की सेविका कहां गई ? उसके जाने से घर की सारी सुन्दरता तथा शोभा भी न जाने उसके साथ ही कैसे गायब हो गयी ?

प्रतिशैलं न माणिक्यं प्रत्यारण्यं न चन्दनम् ।
प्रतिगेहं गुणश्रेष्ठा तादृग् भार्याऽप्यसम्भवा ॥१६५॥

पहाड़ तो हजारों होंगे, पर हर एक पहाड़ में आपको हीरे मोती नहीं मिल सकते । जंगल भी अनेकों हैं, पर हर जंगल में क्या आपको चन्दन के वृक्ष मिलतें हैं ? बिल्कुल नहीं । इसी प्रकार मेरी पत्नी जैसी गुणवती नारी भी आपको हर घर में नहीं मिल सकती । घर तो संसार में लाखों करोड़ों होंगे ॥१६५॥

येनेदंप्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणं ।
न जाने कीदृशं पापं मया जन्मान्तरे कृतम् ॥१६६॥

पता नहीं किसी पिछले जन्म में मुझ से ऐसा कौन सा घोर पाप हो चुका है जिसका फल मुझे अब यह मिला है कि प्रिय पत्नी से बिछुड़ कर उसके बिना असह्य दुःख उठा रहा हूं ? ॥१६६॥

दूरं दूरं गता लोकाः समायान्ति गृहं पुनः ।
कं देशं सा गता रुष्टा यतो नास्या निवर्तनम् ॥१६७॥

सब लोग चाहे कितनी दूर चले जाएं, अंत में वे अपने घर को वापिस आ जाते हैं । पर पता नहीं, वह रूठ कर कहां चली गई है कि वापिस आने का नाम ही नहीं लेती ? ॥१७६॥

या पुरा तु मयाऽऽहूता सदा तत्क्षणमागता ।
नागच्छति कथं सैव प्राथिताऽपिपुन: पुनः ।।१६८।।

पहले मैं अपनी पत्नी को यदि एक बार भी आवाज देकर बुलाता था, तो वह तत्क्षण मेरे सामने आ उपस्थित होती थी । पर अब मेरे भाग्य की विडम्बना देखो ! मेरे बार-बार बुलाने पर भी अब वह मेरे पास नहीं आती ! मैं कितना भाग्यहीन हो गया हूं ।।१६८।।

हर्षौल्लासैर्व्यतीतानि तया सह दिनानि मे ।
अश्रुधाराभिरार्द्राणि कथं नेष्यामि साम्प्रतम् ।।१६९।।

अपनी आयु का प्रत्येक दिन मैं अपनी पत्नी के साथ बड़े सुख, हर्ष और उल्लास के साथ मनाता चला आ रहा था। अब मेरे मन को यही विचार खाता जा रहा है कि बाकी आयु के दिन मैं रोते-रोते गुजार भी सकूंगा कि नहीं ? क्या अब मेरे भाग्य में रोना ही रोना है ? ।।१६९।।

दिनं शोकनिमग्नस्य रात्रिर्गच्छति जाग्रतः ।
प्रियाविरहितस्येदं जीवनं किमु जीवनम् ।।१७०।।

मेरे दिन तो उसका शोक मनाते हुए बीत रहे हैं, और रातें भी उसी की याद में जागते हुए बिता देता हूं । अपनी प्रिया को खोकर सोचता हूं कि यह कैसी जिन्दगी है ? क्या ऐसी व्यर्थ ज़िन्दगी को भी कोई जिन्दगी कहेगा ? ।१७०।।

उद्यानानि सुरम्याणि नदीः प्रस्रवणानि च ।
चरन्नरतिराप्नोमि तामपश्यन्वराननाम् ।।१७१।।

जब मैं किसी सुन्दर बाग में सैर करने जाता हूं, या नदी-नाले-झरने आदि देखता हूं, तो मेरा मन पहले जैसे हर्षोल्लास से नहीं भर उठता, क्योंकि जिसके साथ होने से मुझे यह सब दृश्य

सुन्दर प्रतीत होते थे, अब वह मेरे साथ नहीं होती। अतः यह सब कुछ मुझे अब बिल्कुल नहीं भाता ॥१७१॥

कार्यं तस्यां समावेश्य निर्विशङ्केन चेतसा ।
आस्यते स्म मया तद्वत्कलत्रमिह दुर्लभम् ॥१७२॥

मुझे जब कभी कोई अत्यावश्यक काम होता था, तो मैं उस काम को बेखटके उसके सपुर्द करके निश्चिन्त हो जाता था। मेरा वह काम ठीक मेरी मरज़ी के अनुसार सम्पन्न होता था। उस जैसी समझदार स्त्री कहां मिल सकती है ? ॥१७२॥

भार्याविरहितं सर्वे पश्यन्तु मां जनास्तथा ।
चन्द्रिकारहितं चन्द्रं श्रियाहीनं यथोत्पलम् ॥१७३॥

चांद में यदि चान्दनी ही न रहे, कमल फूल की शोभा यदि कमल से निकल कर कहीं दूसरी जगह चली जाए तो वह कितना भद्दा लगता है ! वैसी ही दशा पत्नी के बिना मेरी हो गई है। सब लोग स्वयं आकर मुझे देख सकते हैं ॥१७३॥

सत्सु दीपेषु सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु ।
तया विना जगत्सर्वं तमोभूतं प्रतीयते ॥१७४॥

दीपक तो सब वैसे ही अब भी हैं, जैसे पहले हुआ करते थे। अग्नि भी पहले जैसी ही है। आसमान में सितारे, चांद, सूर्य, आदि सब कुछ पहले जैसे ही हैं। परन्तु, पता नही, इस सारे संसार में मुझे हर जगह अंधेरा ही अंधेरा क्यों दिखाई दे रहा है ? ॥१७४॥

यत्स्नेहार्द्रं गृहं सर्वं व्यभाज्ज्योतिर्मयं पुरा ।
अद्य जातं तमोभूतं कुत्र सा गृहदीपिका ॥१७५॥

जिसके स्नेहकी ज्योति से मेरा सारा घर पहले जगमग-जगमग करता रहता था, उस घर को दीवाली की भान्ति प्रकाशित करने वाली वह दीपिका पता नहीं कहां चली गई, कि अब सारे घर में घुप अन्धेरा छाया लगता है ॥१७५॥

वक्तव्यमत्रास्त्यधुना प्रभूतं वार्ता अनेका
अपि कुर्वतो मे ।
नि:शेषतां नापि गताः कथास्ता कृतं
तया तु त्वरितप्रयाणम् ॥१७६॥

उसके साथ मैं अनेक बार बातें कर चुका हूं, और अभी अनेकों बार मुझे कई बातें करनी भी थीं। बातों का अभी अन्त तो हुआ नहीं था। पर पता नहीं, वह मुझे छोड़ कर इतनीं जल्दी क्यों चली गई ? ॥१७६॥

तस्याः संगे जगत्सर्वं स्वर्गतुल्यमदृश्यत ।
विना तयाऽधुना सर्वमन्यथा प्रतिभाति मे ॥१७७॥

जब वह मेरे पास होती थी तो यह सारा संसार मुझें स्वर्ग जैसा प्रतीत हुआ करता था। अब वह तो है नहीं। उसके बिना वही संसार मुझे कुछ और ही तरह का लग रहा है ॥१७७।

जलहीनं सरो यद्वच्छुष्कश्चैव तरुर्यथा ।
पक्षहीनो यथा पक्षी तथैवाहं तया विना ॥१७८॥

जैसे पानी के बिना कोई सरोवर हो, जैसे सूखा हुआ कोई वृक्ष हो, जैसे पंखों के बगैर कोई पक्षी हो—वैसी ही दशा अब मेरी हो गई हैं ॥१७८॥

प्रीत्यामोदविलासानामन्तश्चैवमरुन्तुदः ।
भविष्यति कदाप्येवं ज्ञातं नैव पुरा मया ॥१७९॥

मुझे पहले यह पता नहीं था कि आमोद, प्रीति और विलास के दिनों का अन्त इतना दुःखदायी भी हो सकता है ॥१७९॥

व्यामोह इति मन्येऽहं सुमहानादिवेधसः ।
स्यूता सा हृदये स्नेहतन्तुना न तनौ मम ॥१८०॥

मैं समझता हूं कि ब्रह्मा जी ने उसकी सृष्टि करते समय एक बड़ी भारी भूल कर दी कि स्नेह की डोर से उसको मेरे हृदय के साथ तो अवश्य सी दिया, पर यदि उसे मेरे शरीर से साथ जोड़ देते तो कितना अच्छा होता ! ॥१८०॥

आनन्दममन्दं या कुवलयलोचना पुराऽयच्छत् ।
तस्या एव वियोगस्तापयतितरां शरीरं मे ॥१८१॥

जिसका साथ मुझे पहले अत्यन्त सुख तथा आमोद का कारण होता था, अब उसी का वियोग मुझे अत्यन्त दुःख का कारण हो रहा है ॥१८१॥

पुराऽभवत्तु संसारो नन्दनोद्यानसन्निभः ।
समग्रः कण्टकाकीर्णः सम्प्रजातोऽधुना मम ॥१८२॥

जो संसार पहले मुझे स्वर्ग के उद्यान नन्दनवन की तरह लगता था, अब वही मुझे उस बाग के सदृश लगता है जिसमें कांटे ही कांटे उग रहे हों ॥१८२॥

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते ।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजालेपः स्फुलिंगायते ॥
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते ।
हा तस्याः कठिनो वियोगसमयः संहारकालायते ॥१८३॥★

आलकल चांद मुझे इतना दुःख देता है, जितना सूर्य की तपश । धीरे-धीरे चलने वाली वायु भी वज्र तुल्य कठोर लगती

है। फूलों का हार सूई की की तरह चुभता है। चंदन का लेप अंगारों की तरह जलाता है। रात का समय कल्पों के समान लम्बा प्रतीत होता है। अपना शरीर भी बोझ जैसा लगता है। उसके वियोग में व्यतीत हो रहे यह दिन प्रलय के समान विनाशकारी लगते हैं ॥१८३॥

प्राणा मम शरीरस्य लक्ष्मी: सर्वगृहस्य मे ।
मद्भार्यां हरता धात्रा सर्वस्वं हि ममाहृतम् ॥१८४॥

मेरे शरीर में वह प्राणों की भान्ति समायी हुई थी। मेरे सारे घर की सम्पत्ति वही थी। जब विधाता ने उसको मुझ से छीन लिया, तो मैं यही समझता हूं कि छीनने वाले ने मेरा सर्वस्व ही छीन लिया है ॥१८४॥

दिनान्त: सुप्रभातश्च मध्याह्नो रात्रिरेव च ।
ममैते साक्षिण: सर्वे न सा विस्मर्यते मया ॥१८५॥

वह हर समय मुझे याद आती रहती है। चाहे सन्ध्या का समय हो, चाहे प्रभात की बेला, चाहे दोपहर, चाहे रात ॥१८५॥

वर्तिहीनो यथा दीपश्चेतनारहितं वपुः ।
तया विरहितं सर्वं हृतश्रीकं गृहं मम ॥१८६॥

यदि दिया हो, पर उसमें बत्ती न रहे, शरीर तो हो, पर उसमें से प्राण निकल जाएं। उसी तरह की दशा मेरे घर की हो गई है, जिसकी सारी शोभा उस एक नारी के न रहने पर पता नहीं कहां चली गई ? ॥१८६॥

सुगन्धरहितं पुष्पं ज्योत्स्नाविरहित: शशी ।
श्रियाहीनं यथा पद्मं तथैवाहं तया विना ॥१८७॥

किसी फूल से यदि सुगन्ध निकल जाए, यदि चन्द्रमा में से चांदनी निकल जाए, यदि कमल के फूल की सारी शोभा उसमें न रहे, तो जैसी दशा उन सब की होती है, वैसी ही दशा पत्नी के वगैर मेरी हो गई है ॥१८७॥

लभ्यन्ते भुवि नष्टास्तु वाजिवारणवाहनाः ।
प्राप्यते वैभवं नष्टं नैव भार्या दिवङ्गता ॥१८८॥

इस संसार में धन नष्ट हो जाए, तो फिर प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार, यदि हाथी, घोड़े, वाहन आदि को कोई चुरा ले जाए, तो वह फिर प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु उस जैसी भार्या दूसरी बार कभी प्राप्त नहीं होती, यदि एक बार स्वर्ग में चली जाए ॥१८८॥

पुण्यकार्येषु सा साध्वी साहचर्ये सदा स्थिता ।
ज्वलन्ती द्योतमानेव दृढा संकल्पदीपिका ॥१८९॥

साधुओं जैसे स्वभाव वाली वह मेरी पत्नी मेरे साथ धर्म-कार्यों में सदा साथिन बन कर रहती थी। उसका संकल्प बड़ा दृढ़ होता था। बह तो जलती हुई ज्योतिष्मती दीपिका के समान मेरा मार्ग-दर्शन करती रहती थी ॥१८९॥

यत्र सद्गुणसम्पन्ना भवेद्भार्या न तादृशी ।
सेवितं सर्वसम्पद्भिरपि तद्भवनं वनम् ॥१९०॥

जिस घर में उस जैसी सद्गुणों से युक्त पत्नी न हो, उस घर को किसी अन्धकारपूर्ण भयावने जंगल जैसा समझना चाहिए, चाहे वह घर सब प्रकार सुख-सम्पत्ति से परिपूर्ण भी हो ॥१९०॥

मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतेः संघः कुरंगायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते ॥

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात् ।
गेहे यस्य विराजते गुणवती भार्या सती तद्विधा ॥१९१॥★

जिस पुरुष के घर में उस जैसी गुणवती और सती स्त्री हो, उस पुरुष को सुमेरु पर्वत के समान ऊंचे पहाड़ भी छोटे पत्थरों के बराबर प्रतीत होते हैं। भयानक शेरों का समूह उसे हिरणों जैसा लगता है। उसके लिए विष भी अमृततुल्य हो जाता है। आग भी उसे ठण्डे जल जैसी शीतलता देती है। अपार अगाध समुद्र उसे छोटे नाले जैसा लगता है। और जहरीला सांप भी उसे फूलों के हार जैसा प्रतीत होता है ॥१९१॥

धर्मं तथार्थं परमां गति वा
कामं च केचिद्भुवि कामयन्ते ।
सम्प्राप्य पत्नीं सुभगां मया तु
प्राप्तं चतुर्वर्गमिह प्रकामम् ॥१९२॥

अन्य लोग तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहते हैं, परन्तु मैं समझता हूं कि मुझे चारों वस्तुएं उस सच्चरित्र स्त्री के प्राप्त होने से स्वयमेव प्राप्त हो गईं ! ॥१९२॥

जीवन्मुक्तास्तु ते लोका ये सत्कर्मानुषंगिणः ।
मादृशा दारहीनास्तु जीवन्तोऽपि मृता इव ॥१९३॥

जो लोग अच्छे कर्म करते हैं, उनको हम जीवन-मुक्त कहते हैं। पर जो लोग मेरे जैसे होते हैं, जिनकी भार्या न रहे, वे जीते होकर भी मृतसमान ही हो जाते है। ॥१९३॥

भार्यानिधनसन्तप्तं मृतप्रायमकिञ्चनम् ।
मृद्नाति स विधिः किं मां को धर्मो मृतमारणे ॥१९४॥

पता नहीं विधाता क्यों मेरे जैसे लोगों को दुःख देता है, जो अपनी पत्नी की मृत्यु के कारण मृतप्राय हो जाते हैं ? मरे हुए लोगों को मारने से उसे कौन सा पुण्य मिलता है ? ।।१९४।।

तत्प्रीतिसूत्रसन्नद्धः कङ्कालो मम दुर्बलः ।
अस्थिमात्रावशेषोऽपि चलत्यत्र किमद्भुतम् ।।१९५।।

मेरा शरीर इतना कमज़ोर हो गया है कि अब सूखकर केवल हड्डियों का ढांचा सा लगता है । फिर भी यह शरीर का चौखटा चलता फिरता बड़ा अजीव सा लगता है । शायद उसके प्रेम की डोर से बंधा रहने के कारण ही यह काठ की बनी पुत्तलियों की भान्ति हिलता जुलता हो ! ।।१९५।।

सुखसम्पत्समाकीर्णः संसारः प्रागभूदयम् ।
दावाग्निदग्धसर्वस्ववनभूमिरिवाधुना ।।१९६।।

संसार मुझे सुख सम्पत्ति से सम्पूर्ण दिखाई दिया करता था । अब बिल्कुल वही संसार मुझे ऐसी बन भूमि के सदृश लगता है, जिसका सर्वस्व जंगल की आग ने जला डाला हो ।।१९६।।

कान्तावियुक्तेन मया न जाने भवेऽत्र-
नेया दिवसः कियन्तः ।
सम्प्रत्ययोग्यस्थितिरेष देशः करा
हिमांशोरपि तापयन्ति ।।१९७।।

पत्नी तो चली गई । क्या मालूम कि अभी मुझे इस संसार में कितने दिन और जीना पड़ेगा ? मुझे तो ऐसे प्रतीत हो रहा है कि अब और अधिक दिन मेरा जीना व्यर्थ है । क्योंकि अब तो चन्द्रमा की शीतल किरणें भी मेरे शरीर को जलाने लग गई हैं ।।१९७।।

वियुक्तोऽहं पत्न्या वपुरपि जराब्याधिविधुरम् ।
गतो दूरे चात्मस्वजननिकरो धैर्यमपि च ॥
इदानीं व्यामोहादहह विपरीते हतविधौ ।
विधेयं यत्कार्यं स्फुरति मम नाद्यापि हृदये ॥१९८॥ ★

अपनी पत्नी से मैं विछुड़ चुका हूं। मेरी आयु भी अधिक हो चुकी है। इस कारण शरीर कृश हो गया है । साथी सम्बन्धी भी अब दूर-दूर रहते हैं। इस लिए मेरा धैर्य जबाव देता जाता है। विधाता भी अब मुझे अपने विपरीत दिखाई दे रहा है। ऐसी दशा में मुझ पर मोह सा छा रहा है और कुछ सूझ नहीं रहा कि करूं तो क्या करूं? ॥१९८॥

तादृशी वनिताऽरण्ये यदि स्यात् तद्वनं गृहम् ।
प्रासादोऽपि तया हीनो नूनं हि नरकायते ॥१९९॥

वीरान जंगल में भी यदि उस जैसी स्त्री खड़ी हो जाए, तो जान लीजिये कि वह सुनसान वन भी किसी सम्पन्न घर के समान है। और यदि कई मंज़िलें ऊंचा राजमहल ही क्यों न हो, पर यदि वहां उस जैसी स्त्री न हो, तो समझ लें कि वह राजमहल नहीं है, वह तो नरक है ॥१९९॥

गता अनेके दिवसाश्च रात्र्यः
सूर्योदयाश्चापि निशान्तकालाः ।
मुहूर्त्तमात्रं मनसस्तदीया
याताविदूरं मधुरा स्मृतिर्नो ॥२००॥

अनेकों दिन व्यीत हो गए, अनेकों रात्रियां भी वीत गई, कई प्रभातें हुईं और सन्ध्यायें भी, परन्तु उसकी मधुर यादें एक क्षण भी मेरे मन से दूर नहीं हुईं ॥२००॥

समयेऽसमये वापि ह्यु चिताऽनुचिताऽपि वा ।
न स्मर्यते मदिच्छा या तया नानुमता भवेत् ।।२०१।।

ऐसा कोई भी मौका मुझे याद नहीं, जब उसने मेरी किसी इच्छा से असहमति प्रकट की हो, या उसे पूरी लगन से पूर्ण न कर दिया हो। कई बार मेरी कोई इच्छा उचित होती थी और कई बार अनुचित भी। कभी समय पर की जाती थी, और कभी बिल्कुल बेमौका। पर मेरी पत्नी का ध्यान ऐसी बातों पर जाता ही नहीं था। वह अपना सर्वोत्तम धर्म यही समझती थी कि मेरे पति की कोई भी इच्छा अपूर्ण न रह जाए ।।२०१।।

ह्रद: पद्मश्रिया हीन: प्रभाहीनश्च चन्द्रमा: ।
मुकुलो गन्धहीनो वा पतिस्तस्यास्तया विना ।।२०२।।

जो दशा किसी सरोवर की कमलों से हीन हो जाने के बाद होती है, जो दशा चांदनी के न रहने पर चन्द्रमा की हो जाती है, जो दशा सुगन्ध के बगैर फूलों की होती है, वैसी ही दशा पत्नी के बगैर उसके पति की हो गई ।।२०२।।

तस्या: पतिर्नयनसङ्कलिताश्रुबिन्दु-
धाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृत्प्रदेशम् ।
गात्राणि मे दहतु किन्तु वियोगवह्नि:
संरक्ष्यतां प्रियतमां हृदि वर्तमानाम् ।।२०३।।

उसके पति का हृदय उसके वियोग में तप रहा है। अत: वह अपनी आंखों से गिरते हुए आंसुओं की धारा से अपने हृदय को सिंचित करता रहता है कि वियोग की आग उसके पति के शरीर को चाहे जितना जला डाले, पर उसकी प्रियतमा की पूरी रक्षा होती रहे, जो उसके हृदय में प्रतिक्षण विराजमान है ।।२०३।।

विपद्ग्रस्तोऽवसीदामि वियुक्तः कान्तया तया ।
अवसीदति सद्यो वै स्थूणाहीनं यथोटजम् ॥२०४॥

उसके साथ से बिछुड़ कर मेरी दशा वैसे हो गई है जैसे किसी छप्पर वाली कुटिया की होती है, जिसके नीचे से कोई खम्भा ही उखाड़ कर ले जाए ॥२०४॥

स्वर्गतुल्ये गृहे नूनं नीतं येन वयो निजम् ।
मादृशो हतभाग्योऽसौ श्मशानेऽद्य वसेत्कथम् ॥२०५॥

मेरे जैसा अभागा आदमी जिसने अपनी सारी आयु स्वर्गतुल्य घर में सुखपूर्वक व्यतीत की हो, अपनी पत्नी के स्वर्ग चले जाने के बाद श्मशानतुल्य संसार में कैसे जी सकता है ? ॥२०५॥

मृणालहारः शशिनो मयूखाः
सुशीतलं चन्दनलेपनं वा ।
तस्या वियोगे पविपाततुल्ये
मामर्दयन्ति प्रसभं समस्ताः ॥२०६॥

उससे विछुड कर मुझ पर जैसे वज्रपात हो गया है । मेरा हृदय जलने लगा है । अब कमल फूलों की डण्डी से निर्मित हार और चन्द्रमा की ठण्डी किरणें मेरे हृदय को कोई ठण्डक नहीं पहुंचातीं । अब मैं यदि अपने हृदय पर शीतल चन्दन के लेप करता जाऊं, तो भी मेरे मन की जलन शान्त नहीं होती ॥२०६ ।

यावत्स्थितवती साऽऽर्या पत्नीरुपेण सन्निधौ ।
असारोऽप्येष संसारः सारवानन्वभूयत ॥२०७॥

लोग चाहे कहते रहे कि इस संसार में कोई सार नहीं है, पर मेरी पत्नी जब तक मेरे साथ रही तब तक यह संसार मुझे बहुत सारवान् प्रतीत होता रहा ॥२०७।

विपत्सु मन्त्री प्रणयेषु कान्ता
भोज्येषु माता करणेषु दासी ।
दानेषु लक्ष्मी:सुकृतेषु साध्वी
न तत्समा वै वनिता धरायाम् ॥२०८॥

राजा लोगों को उनके मन्त्री जिस प्रकार समयोचित मशविरा देते हैं, वैसे ही मेरी पत्नी भी मुझे विपत्ति के समय सलाह दिया करती थी । जिस आग्रह तथा स्नेह से मेरी माता मुझे भोजन कराया करती थी, वैसे ही प्रेम से मुझे मेरी पत्नी भी खाना खिलाती थी । मेरी नौकरानी की भान्ति वह मेरी सेवा करती थी । एक सती भार्या की तरह वह मुझ से प्रेम करती थी । दान करते समय वह साक्षात् लक्ष्मी का रूप धारण कर लेती थी और जब पुण्य कार्य करती थी, तो किसी महान् पुण्यात्मा साध्वी स्त्री के समान करती थी ॥२०८॥

सिन्दूरबिन्दूदयशोभिभालं सुकेशजालं जितमेघमालम् ।
चक्षु: सलास्यं वदनं सहास्यं
निसर्गभूषा हरिणेक्षणाया: ॥२०९॥

सोने चान्दी के गहने वही स्त्रियां पहनती हैं जिनके अंगों में सुन्दरता की कमी हो । पर मेरी पत्नी का प्रत्येक अंग सौन्दर्य के गहनों से मालामाल था । उसे भूषणों की आवश्यकता नहीं थी । उसका एक गहना था, उसके रेशमी मुलायम काले केश, जिनकी बराबरी काले बादल भी नहीं कर सकते । दूसरा गहना था उसकी मस्ती भरी नशीली आंखें, जिन्हें देख होश-हवास कायम नहीं रहते थे । उसका तीसरा गहना था उसके सुन्दर मुखड़े पर हल्की मुस्कराहट की रेखा, जिसे देख मन बेकाबू हो जाता था । और उसका चौथा गहना था, उसका चौड़ा चमकता माथा, जिस पर लगी सिन्दूर की बारीक बिन्दी गज़ब ढाती थी ॥२०९॥

मन्दानिल: प्रीतिकर: प्रभाते तथैव
संवाससुखं सुतन्व्या: ।
प्रचण्डदावाग्निविनाशतुल्य
स्तस्यावियोगश्च विवर्धमान: ।।२१०।।

प्रभात के समय चलती हुई शीतल वायु जितना मन को प्रसन्न करती है उतना ही सुख उसकी संगति में मुझे भी मिलता रहा है; परन्तु अब उसी के वियोग की अग्नि मुझे इतना जला रही है, जैसे किसी घने जंगल में प्रचंड अग्नि धांय-धांय करके सब कुछ भस्म कर रही हो ।।२१०।।

धन्या नरास्ते भुवि भाग्यवन्त:
स्वप्नेषु पश्यन्ति हि वल्लभां ये ।
ममास्तभाग्यस्य गते कलत्रे
गता तु निद्राऽपि च वैरिणी सा ।।२११।।

इस संसार में वही लोग भाग्यवान होते हैं, जो स्वप्नों में अपनी प्रिया को देख सकते हैं । पर मैं कितना अभागा हूं कि मेरी पत्नी के मरते ही मेरी नींद भी कहीं गायब हो गई । जब मुझे नींद ही नहीं आती तो मैं उसे स्वप्नों में कैसे देख सकता हूं ? इस तरह मेरी नीन्द भी मेरे साथ बैर कमा रही है, क्योंकि मेरे चाहने पर भी मेरे पास तक नहीं फटकती और मुझ से दूर भागती है ।।२११।।

क्लेशावहव्यथाभारपीडितं ब्रणितं भृशम् ।
तद्वियोगाग्निसंतापाज्ज्वलतीव मनो मम ।।२१२।।

मेरा हृदय उसके वियोग की अग्नि से हर समय जलता रहता है, और इतना पीड़ित रहता है कि अब क्लेश का भार मुझ से सहारा नहीं जा सकता ।।२१२।।

यन्न दृष्टं श्रुतं वाऽपि न चोक्तं यत्कदाचन।
तत्तच्छ्रुतं तथा दृष्टमवशेन मयोदितम् ॥२१३॥

जिस प्रकार का वातावरण मैंने अपने घर में पहले कभी न देखा था, वैसा सब कुछ मुझे अब देखना पड़ रहा है। जो बातें मेरे सामने कहने की पहले किसी की हिम्मत न होती थी, वे बातें मुझे अब सुननी पड़ती हैं। जो बातें मैं पहले किसी को न कहता था, वे सब मुझे कह देनी पड़ती हैं। मैं इतना परवश हूं कि अब मैंने किसी से शिकायत करना भी छोड दिया है ॥२१३॥

किं तिष्ठामि किमु व्रजामि
किमहं जागर्मि निद्रामि वा।
किं जानामि किमु भ्रमामि
किमु वा सुख्यामि दुःख्यामि वा।
किं नास्म्यस्मि किमित्यकल्पकलिते
न क्वाऽपि पक्षे स्थितः।
प्राप्तोऽहं तु तया विनाद्य कमपि
क्रूरं विकारं भुवि ॥२१४॥

उसके विना मुझ को एक विचित्र सा विकार हो गया प्रतीत होता है और मुझे इतना भी पता नहीं चलता कि मैं चल रहा हूं या खड़ा हूं; जाग रहा हूं या सो रहा हूं, सुख में हूं या दुःख में, मुझ में कुछ समझ बूझ है, या मैं निरा पागल हो गया हूं। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि मेरा कोई अस्तित्व भी रहा है या नहीं। इसी तरह सोचते-सोचते मैं किसी एक पक्ष पर स्थित नहीं रहता। मुझ यह अजीब बीमारी लग गई है ॥२१४॥

बन्धूनां सान्त्वनाशब्दो तथा मह्यं न रोचते।
अग्निसन्दग्धकायस्य मारुतः शीतलो यथा ॥२१५॥

बन्धु लोगों के सहानुभूति पूर्ण शब्द मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। क्या शीतल वायु उस पुरुष को अच्छी लग सकती है, जिसका सारा शरीर अग्नि से जल गया हो ? ॥२१५॥

धर धैर्यं वदन्त्येके ते धैर्यं धारयन्ति वै ।
येषां मनो शिलातुल्यं मनो मे हि शिरीषवत् ॥२१६॥

लोग तो मझे कहते हैं कि भाई, जो होना था, वह हो चुका। अब तो तुम्हें धीरज से ही काम लेना पड़ेगा। परन्तु मैं उन लोगों से कहता हूं कि भाई, धैर्य तो वे लोग ही कर सकते हैं जिनके दिल पत्थर जैसी सख्त चीजों से बने हों। पर मेरा मन तो शिरीषफूल से भी अधिक कोमल है। मैं धीरज धरूं भी, तो कैसे धरूं ? ॥२१६॥

भाग्यवन्तो हि ते लोका निद्रायन्ते सुखेन ये ।
भार्यानिधनसन्तप्तः कथङ्कारं शयेन्वहम् ॥२१७॥

वे लोग भाग्यवान हैं, जो रात को सुख से सो जाते हैं। पर, मुझे कैसे नींद आ सकती है, जिसका हृदय पत्नी के स्वर्ग चले जाने के बाद सदैव जलता रहता है ? ॥२१७॥

तद्वियोगसमुत्थेन तच्चिन्ताविपुलार्चिषा ।
अहर्निशं शरीरं मे पावकेनेव दह्यते ॥२१८॥

उसके वियोग के दुःख से उत्पन्न अग्नि की लपटों के कारण मेरा शरीर दिन रात जलता रहता है ॥२१८॥

सह दीर्घा मम श्वासैरिमा सम्प्रति रात्रयः ।
पाण्डुराश्च ममैवाङ्गैः सह ताश्चन्द्रभूषणाः ॥२१९॥

उसके वियोग में मैं लम्बे-लम्बे सांस लेता हुआ रातें गुजार

देता हूं, पर ये निर्दयी रातें भी तो इतनी लम्बी होती है कि कटती ही नहीं हैं। मेरे अपने अंग तो पीले हो गए हैं पर मेरे अंगों के साथ ये रातें भी मुझे पीली और फीकी सी क्यों लगती हैं ? यद्यपि आकाश में चान्दनी का प्रकाश तो पूरा फैला है ।।२१९।।

आसीनः शयितः स्थितः प्रचलितः स्वप्नायितो जाग्रतः ।
पश्यन्मीलितलोचनो व्यवहरन्मौनं प्रपन्नोऽथवा ।।
किंवातः परमुच्यते प्रतिदिशं चाग्रे तथा पृष्ठतः ।
तां मोहाकुलवीक्षणार्द्रनयनः पश्यामि
नक्तं दिवम् ।।२२०।।

चाहे मैं बैठा हुआ होऊं, चाहे सोया हुआ, चाहे खड़ा होऊं चाहे चल रहा, चाहे जाग रहा होऊं, चाहे सो रहा, चाहे देख रहा होऊं, चाहे मेरी आंखें बन्द हों, बोलते हुए भी, और मौन धारण किए हुए भी, हर दशा में और हर दिशा में, अपने आगे-पीछे चारों ओर, हर समय मुझे वही दिखाई देती रहती है ।।२२०।।

पुरा जन्मनि सम्बन्ध आवयोरुभयोर्ह्यभूत् ।
जन्मन्यस्मिन्पुनश्चाभून्नूनमग्रे भविष्यति ।।२२१।।

मेरा विचार है कि उसका और मेरा सम्बन्ध पिछले जन्म में भी अवश्य रहा होगा। हमारा सम्बन्ध इस जन्म में भी रहा. और मैं निश्चय से कह सकता हूं कि हमारा सम्बन्ध अगले जन्म में भी इसी प्रकार ही रहेगा ।।२२१।

वसन्तः शिशिरश्चैवं निदाघश्च तपात्ययः ।
साक्षीभूता ममैते सा क्षणमेकं न विस्मृता ।।२२२।।

चाहे गर्मी हो या सर्दी, शिशिर ऋतु हो या वसंत, यह सब

ऋतुएं मेरी साक्षी हैं कि मैं उसे एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सका हूं ॥२२२॥

कामं स्त्रियः सन्ति सहस्रशोऽन्याः
संशोभते भूमिरियं तयैव ।
नक्षत्रतारागणसंकुलाऽपि
ज्योतिष्मती चन्द्रिकयैव रात्रिः ॥२२३॥

सुन्दरी स्त्रियां तो संसार में अनगिनत होंगी, परन्तु सारी पृथिवी की शोभा उस अकेली स्त्री से ही थी । सितारे तो आसमान में अनगिनत चमकते रहते हैं, परन्तु रात की असली शोभा तो केवल चान्द की चान्दनी के कारण ही होती है ॥२२३॥

ददौ रूपं रतिस्तस्मै लक्ष्मीश्चैश्वर्यसम्पदः ।
पार्वती पतिभक्तिं च मृदुवाचं सरस्वती ॥२२४॥

उस पुण्यात्मा स्त्री के गुणों पर मुग्ध होकर भगवान कामदेव की स्त्री रति ने अपनी सारी सुन्दरता उसको दान कर दी । भगवान विष्णु की पत्नी भगवती लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर उसे ऐश्वर्य सुख से मालामाल कर दिया । देवी पार्वती ने उसे पतिभक्ति का वरदान दिया और मीठी कोमल वाणी बोलना उसको देवी सरस्वती भगवती से प्राप्त हुआ था ॥२२४॥

गतायामपि कान्तायां जीवनं यापयामि यत् ।
मन्ये नूनं करोम्यत्र पापकृत्यं सुदारुणम् ॥२२५॥

उसकी मृत्यु के पश्चात् भी मैं जीवन व्यतीत कर रहा हूं, पर उसके बगैर जी कर मुझे ऐसे लगता है जैसे मैं कोई बड़ा भारी अपराध या पाप कर रहा हूं ॥२२५॥

तदेव सदनं ताश्च वीथयो नगरं च तत् ।
सर्वमेवान्यथा भाति पद्मलोचनया विना ।।२२६।।

शहर भी वैसा ही है जैसा पहले था । शहर की गलियां भी वैसी की वैसी हैं । मेरा अपना घर भी वही है । पर उस पत्नी के बगैर मुझे ये सब और ही तरह के लगते हैं । अपरिचित, बेगाने और नीरस ।।२२६।।

न जाने किं कृतं कर्म फलं यस्य लभेऽधुना ।
ज्वलच्चितार्धदग्धं यज्जीवनं मम यास्यति ।।२२७।।

पता नहीं मैंने कब या कहां कोई ऐसा कर्म किया होगा जिसका फल मुझे अब मिल रहा है । मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मेरा जीवन अब चिता के अन्दर किसी अधजली लाश के समान व्यतीत होगा ।।२२७।।

यदा यदा स्मृतिस्तस्या हृदये जायते मम ।
ध्वान्ते भान्ति मनोदीपा एकदैव सहस्रशः ।।२२८।।

मेरे हृदय में सो रही उसकी यादें जब कभी जाग उठती हैं, तो मुझे ऐसे प्रतीत होता है कि मेरे मन के अन्धेरे में किसी ने अचानक हजारों दिये इकट्ठे जला दिये हैं ।।२२८।।

सर्वकालं परं सौख्यं न कस्याप्यभवद्भुवि ।
इत्युक्तेः खलु याथार्थ्यमनुभूतं स्फुटं मया ।।२२९।।

इस संसार में पूर्ण सुख किसको मिला है ? यदि किसी को हर प्रकार का सुख मिला भी हो तो वह सुख सदैव नहीं रह सकता । थोड़ी देर के लिए भले ही मिला होगा । यह कहावत मैंने कई वार सुनी थी ; पर यह कितनी सच्ची कहावत है इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे पत्नी खो देने के वाद ही हुआ है ! ।।२२९।।

यस्या आनन्दसन्दोहस्यन्दिनो संगतिः पुरा ।
केवलं स्मृतयस्तस्या अधुना प्रीणयन्तिमाम् ।।२३०।।

पहले तो मुझे उसकी संगति पूर्ण आनन्द देती रहती थी, अब मुझे सुख देने के लिए केवल उसकी मधुर यादें ही बाकी रह गई हैं ।।२३०।।

भार्याविरहितोऽपीह नैकाकी सम्भवाम्यहम् ।
तिष्ठन्ति साहचर्ये मे स्मृतयस्तत्सुकर्मणाम् ।।२३१।।

मेरी भार्या मुझे अकेला छोड़कर चली गयी, पर फिर भी मैं अकेला नहीं हूं, क्योंकि उसकी मीठी यादें अब भी मेरी संगिनी बन कर मेरा साथ निभा रही हैं ।।२३१।।

यान्त्येवावसानं तत्स्मृतयोऽपि शनैः शनैः ।
तुषारसंवृताः सन्ति शाद्वला वनभूमयः ।।२३२।।

धीरे-धीरे उसकी यादें भी एक दिन मेरे हृदय से मिट जाएंगी । हरी घास वाली वन भूमियां भी कभी न कभी कुहरे से ढक जाती हैं ।।२३२।

निशाविरहितश्चन्द्रो विहायसि न शोभते ।
नष्टकान्तिरहं शोभे कान्तया न तया विना ।।२३३।।

रात्रि के विना जैसे चांद की आकाश में कोई शोभा नहीं होती, वैसे ही अपनी प्रिय पत्नी के विना मेरी शोभा न जाने कहां चली गई ! ।।२३३।।

नरस्य दुःखदग्धस्य यस्या दर्शनमौषधम् ।
गुणानुरूपिणी भार्या सौभाग्येनैव लभ्यते ।।२३४।।

जिस स्त्री के मुस्कुराते चेहरे को देखने भर से सब दुःख-चिन्ता दूर भाग जाते हों और जो स्त्री अपने पति के गुण तथा स्वभाव के अनुरूप कार्य करे ऐसी भार्या किसी सौभाग्यवान पुरुष को ही प्राप्त हो सकती है ॥२३४॥

देशे देशे हि दृश्यन्ते नार्यः सौंदर्यगर्विताः ।
सुमुखी शीलसम्पन्ना कापि दृष्टा न तत्समा ॥२३५॥

प्रत्येक देश में सुन्दर नारियां तो आपने देखी होंगी, परन्तु उन में से कितनी हैं, जिन को अपने सौंदर्य पर गर्व नहीं होता, पर उस जैसी सुन्दर शीलवती स्त्रियां कम ही देखने में आती हैं ॥२३५॥

गता विदूरेऽपि समस्त लोका
नूनं समायान्ति गृहं स्वकीयं ।
देशः स कुत्रास्ति विचित्रभूमिः
प्रत्यागमो नास्ति यतस्तदीयः ॥२३६॥

सभी लोग, चाहे कितनी ही दूर क्यों न चले जाएं, अन्त में अपने घर को लौट आते हैं । वह देश न मालूम कितना विचित्र होगा जहां जा कर वह वापिस आने का नाम ही नहीं लेती ॥२३६॥

भुवि स्थिता हि या साध्वी सर्वसौख्यप्रदा ह्यभूत् ।
देवी दिवं गता सैव सर्वसौख्यहरा कथम् ॥२३७॥

मेरी पत्नी अपने सरल सुभग स्वभाव के कारण इस पृथ्वी पर मुझे पहले सब प्रकार के सुख ऐश्वर्य प्राप्त कराती थी, वही अब स्वर्ग में जाकर मेरे सब सुखों को हरने वाली कैसे बन गई ? ॥२३७॥

तिष्ठामि सुस्थो भवने परं सा
गतेऽति चिन्ता हृदये मदीये ।
स्वर्लोकयात्रा कठिनाऽतिदीर्घा
नैकाकिनी पारयितुं समर्था ।।२३८।।

मैं तो अपने घर में ही बैठा हूं, जहां हर प्रकार का आराम मिल सकता है । पर वह अकेली स्वर्गलोक की यात्रा करने चली गयी है । मेरे मन को यही चिन्ता खा रही है कि वहां वह कैसे जा पायेगी ! स्वर्गलोक की इतनी लम्बी यात्रा करना बड़ा कठिन काम है और फिर वह अकेली है ! ।।२३८।।

वत्सरा वासरीयन्ति स्म यत्सङ्गे पुरा मम ।
सम्प्रति तद्वियोगे वै वत्सरीयन्ति वासरः ।।२३६।।

आजकल उसके बिना मुझ अभागे को एक-एक दिन भी वर्षों के समान लम्बा लगता है । जब कि उसके साथ रहते हुए पहले मेरे लिये कई वर्षों का समय भी एक-एक दिन के समान व्यतीत हो जाता था ।।२३९।।

अनलस्तम्भनविद्यां नूनं भार्या ममाभिजानाति ।
तद्विरहतापतप्ते हृदि मे कथमन्यथा वसति ।।२४०।।

मेरा विचार है कि मेरी भार्या को "अनल-स्तम्भन विद्या" आती है, जिसके कारण उस पर आग लग जाने का कोई प्रभाव नहीं होता, क्योंकि मेरे हृदय में उसके वियोग के कारण अग्नि की लपटें उठती रहती हैं, परन्तु फिर भी मेरे हृदय में बस रही प्रिया पर उस अग्नि का जरा भी प्रभाव नहीं होता ।।२४०।।

अणोरणीयान् महतो महीयान्
मुधैव ते ब्रह्मविदो वदन्ति ।
योगे वियोगे दिवहो हि तस्या
अणोरणीयान् महतोमहीयान् ।।२४१।।*

ब्रह्मज्ञानी कहते है कि परब्रह्म छोटे से छोटे अणु से भी छोटा होता है और बड़ी से बड़ी बस्तु से भी बहुत बड़ा होता है, परन्तु मैं समझता हूं कि छोटी से छोटी वस्तु तो दिन का समय हो जाता है जब मेरी प्रिया मेरे साथ रहे, और उसके वियोग में वही दिन बड़ी से बड़ी बस्तु से भी बड़ा लगता है ।।२४१।।

अपूर्वा कल्पवृक्षस्य शाखा सा क्षितिमण्डले ।
यत्पाणिपल्लवोऽप्येको ह्यजयत्तं सुरद्रुमम् ।।२४२।।*

लगता है कि वह कल्पबृक्ष की किसी अद्‌भुत शाखा के समान इस पृथ्वी पर आ गयी थी, जो अपने कोमल हस्तपल्लव से दान करके देवताओं के वृक्ष को भी लज्जित कर देती थी ।।२४२।।

मृत्युजीवनभेदं तु जानाम्येतावदेव वै ।
जीवनं सङ्गतिस्तस्या मृत्युस्तस्या विसङ्गतिः ।।२४३।।

जीवन क्या है ? मृत्यु क्या है ? ऐसी बातों का भेद केवल ज्ञानी पुरुष ही बता सकते हैं । मैं तो केवल इतना ही जान सका हूं कि जीवन केवल उतने ही समय को कहना चाहिए, जितना उसकी संगति में व्यतीत हो जाए, और मृत्यु उस समय को कहना उचित होगा, जब उससे बिछुड़ कर रहना पड़े ।।२४६।।

यज्ञोद्गतो वह्निरपि प्रचण्डः
प्रशान्ति मायाति मखान्तकाले ।
तदीयविश्लेषभवोऽनलस्तु
यत्नैरनेकैरपि नैति शान्तिम् ।।२४४।।

यज्ञ की आग चाहे कितनी प्रचण्ड क्यों न हो, हवन समाप्त हो जाने के पश्चात् वह शान्त हो जाती है । पर उसके वियोग से उत्पन्न यह कैसी अग्नि है जो लाख यत्न करने पर भी शान्त नहीं की जा सकती ! ।।२४४।।

हृदयं मम तेनेदं नूनमद्याजरामरम् ।
अश्मसारमिदं वाऽपि यद्धि दुःखैर्न शीर्यते ।।३४५।।

अवश्य मेरा हृदय अजर, अमर, अथवा पत्थर का बना हुआ होगा, क्योंकि इतने बड़े दुःख को झेलता हुआ भी वह अभी तक टूट कर टुकड़े टुकड़े नहीं हो गया ।।२४५।।

अनालोक्य प्रियां भार्यां जीवामीह यतस्त्वहम् ।
नास्ति प्रेमलवः कश्चिन्नूनं तु हृदये मम ।।२४६।।

अवश्य ही मेरे हृदय में उसके लिए प्रेम का लेश मात्र भी न होगा ; अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि वह तो संसार छोड़ कर चली जाए, और मैं उसके विना भी जीता रह जाऊं ! ।।२४६।।

पद्मलोचनया हीनो जातोऽहं विरसस्तथा ।
विना वृष्ट्या यथा शुष्कः पादपो ह्यवसीदति ।।२४७।।

उस कमल नयनी के न रहने पर मेरा जीवन बिल्कुल रसहीन सूखा-सूखा सा लगता है । यदि जल वृष्टि न हो तो जो

दशा किसी सूखे वृक्ष की होती है, वही मेरी दशा हो रही है ॥२४७॥ ।

तस्यां समर्प्य कार्याणि यः सदा सुखमास्थितः ।
निराश्रितं तु कृत्वा तं मृता सा वा मृतस्त्वहम् ॥२४८॥

गृहस्थी के सब आवश्यक काम उसी को सौंप कर मेरे दिन आराम से व्यतीत हो रहे थे । अब मुझे अकेला छोड़ वह स्वयं चली गयी । उसके वगैर मैं बिल्कुल निराश्रित, बेसहारा हो गया हूं । पता नहीं मृत्यु उसकी हुई है या मेरी हुई है, जो बिल्कुल अकेला और बेसहारा रह गया है ॥२४८॥

कान्तानिधनदावाग्निदग्धो भर्त्ता न जीवति ।
इति वादमपाकर्तुमहं जीवामि भूतले ॥२४९॥

कहते हैं कि जिस पुरुष की स्त्री की मृत्यु हो जाती है, उसका शरीर इस तरह जलता रहता है जैसे दावाग्नि से जंगल । वह पुरुष देर तक जीवित नहीं रह सकता । यह बात सच नहीं है । यही सिद्ध करने के लिए मैं आज तक जिन्दा हूं ॥२४९॥

माङ्गल्याऽतिकल्याणी शान्तिदा देवतेव सा ।
प्रतिरोमं ममाङ्गेषु वसत्येव प्रतिक्षणम् ॥२५०॥

मेरी वह प्रिय पत्नी प्रतिक्षण मेरे शरीर के हर अंग और प्रत्येक रोम में इस प्रकार बस रही है जैसे कोई महामंगलदायक कल्याण देनेवाली शान्तिदायक शक्ति हो ॥२५०॥

सतीत्वं चाति सौन्दर्यं तस्या आभूषणद्वयम् ।
विनान्यैर्भूषणैः साऽभूत्सुन्दरीणां शिरोमणिः ॥२५१॥

वह दो बहुमूल्य गहनों की स्वामिनी थी । उसका एक गहना था पतिव्रत-गुण, तथा उसका दूसरा गहना था उसको

शारीरिक सुन्दरता। इन दोनों गहनों के कारण उसे और किसी गहने की आवश्यकता ही नहीं थी। विना गहनों के भी वह सब सुन्दर स्त्रियों से सुन्दर लगती थी ॥२५१॥

तद्विधं शीलसम्पन्नं कलत्रं रूपभासुरम् ।
प्राप्यते सुकृतादेव न भाग्यान्न पराक्रमात् ॥२५२॥

उस प्रकार की सुन्दरी तथा शीलवती नारी किसी को बड़े पुण्य कर्मों से ही प्राप्त हो सकती है। ऐसी स्त्री का प्राप्त करना जोर जबरदस्ती या बहादुरी का काम नहीं है। भाग्य से भी ऐसी स्त्री किसी को नहीं मिल सकती ॥२५२॥

स्नुषाः श्वश्रूर्न शंसन्ति मिथ्यावादोऽस्ति लौकिकः ।
अपूजयन् स्नुषाः किन्तु मत्वा देवीमिमां निजाम् ॥२५३॥

लोग कहा करते हैं कि पुत्रबधुए अपनी सास की कम ही प्रशंसा करती हैं। पर यह बात मुझे ठीक नहीं जचती, क्योंकि उसकी एक नहीं पांच पुत्र-वधुए थीं और वे पांचों की पांचों उसकी इतनी सेवा पूजा करती थीं जैसे वह किसी देवी देवता का अवतार हो ॥२५३॥

तस्या भक्तिपरा नित्यं तत्प्रेमपरिकर्षिताः ।
स्नुषास्तां पर्यसेवन्त रुग्णाऽभूत्सा यदाऽपि वा ॥२५४॥

जब कभी वह बीमार पड़ जाती थी तो उसकी जितनी सेवा उसकी पांचों पुत्रवधुएं, उसके प्यार तथा स्नेह से प्रभावित होकर, दिन-रात करती थीं, वह देखने योग्य होती थी ॥२५४।

सुमित्रा राजरानीति ह्युषा वीणा तथैव च ।
सुषमेति स्नुषास्तस्याः पंच सेवापरायणाः ॥२५५॥

उसकी पांच पुत्रबधुओं के नाम थे सुमित्रा, उषा, राजरानी,

वीणा तथा सुषमा, और यह पांचों ही सदा उसकी सेवा अत्यन्त प्रेम तथा भक्ति से करती थीं ।।२५५।।

सुमित्रा तत्स्नुषा धन्या देवेन्द्रसहधर्मिणी ।
धन्या यथा सुमित्राऽभूत् पुत्रो यस्यास्तु लक्ष्मणः ।।२५६।।

सबसे बड़े पुत्र देवेन्द्र की पत्नी सुमित्रा बड़ी भाग्यशालिनी है, जैसे लक्ष्मण की माता सुमित्रा थी ।।२५६।।

यथाऽऽकाशमुषोनित्यं निशान्ते सम्प्रकाशते ।
उषस्तद्वद्गृहं तस्याः सद्गुणैस्तैस्त्वहर्निशम् ।।२५७।।

उसकी दूसरी पुत्रवधू उषा अपने सद्‌गुणों से उसके घर को वैसे ही प्रकाशित करती रहती है जैसे प्रभात के समय उषा सारे आकाश को ज्योतिर्मय बना देती है ।।२५७।।

राजते या सखीवर्गे कान्त्या वक्त्रस्य सन्ततम् ।
राजरानीसमाख्याता तृतीया तत्स्नुषा वरा ।।२५८।।

उसकी तीसरी पुत्रवधू अपने सुन्दर चेहरे से सब सखियों में किसी राजा की रानी की भान्ति विराजती है । इसलिए उसका नाम राजरानी पड़ा ।।२५८।।

मधुरं-मधुरं या च मन्दं मन्दं च गायति ।
वीणा तस्याः स्नुषा साक्षात् वीणापाणिः
सरस्वती ।।२५९।।

उसकी चौथी पुत्रवधू बड़े मधुर-मधुर स्वर में धीरे-धीरे गाती रहती है । उसका नाम वीणा है । इसलिए उसे वीणापाणि साक्षात् सरस्वती देवी का अवतार ही कहना चाहिए ।।२५९।।

यथा वसन्ते पुष्पाणां सुषमा वर्धतेऽधिका ।
सुषमानामविख्याता स्नुषा तस्यास्तु पञ्चमी ।।२६०।।

उसकी पांचवी पुत्रवधू का नाम है सुषमा और उसकी सुन्दरता वैसी ही लुभावनी है जैसे बसन्त ऋतु में फूलों की सुषमा (शोभा) ।।२६०।।

अराजत् स्वगृहे तन्वी स्नुषापञ्चकसंवृता ।
यथाऽप्सरःसभामध्ये सुन्दरी सा पुलोमजा ।।२६१।।

उनकी सास अपने घर में पांचों पुत्रवधुओं के मध्य बैठी हुई ऐसे लगती थी जैसे स्वर्ग की अप्सराओं की सभा के बीच सुन्दरी इन्द्राणी बैठी हुई हो ।।२६१।।

तड़ागे राजहंसीव पद्मिनीपरिसंवृता ।
सखीभिर्वेष्टिताऽराजत् कण्वकुट्यां शकुन्तला ।।२६२।।

या किसी सरोवर में कोई राज हंसिनी हो, जिसके चारों ओर कमल की सुन्दर कलियां खिल रही हों, या कण्वऋषि के के आश्रम में उसकी पालिता पुत्री शकुन्तला हो, जिसे चारों ओर से उसकी सुन्दर सखियों ने घेर रखा हो ।।२६२।।

आदित्यस्य वरप्रभेव नयनानन्दप्रदा सुप्रिया ।
गोदेवाखिलतापनाशनकारी स्वर्धेनुवत्कामदा ।
गङ्गेवाघविनाशिनी पतिमनः सन्तोषसच्चन्द्रिका
पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिर्भार्या गृहे तद्विधा ।।२६३।।*

उस प्रकार की भार्या किन्हीं बड़े पुण्यात्मा पुरुषों को महान् सत्कर्म करने के पश्चात् मिल सकती है । ऐसी पत्नी नेत्रों को उतना ही आनन्दित करती है जितना सूर्यकी प्रभा कमल फूलों को । वैसी स्त्री गोदावारी नदी के जल की भांति सब तापों को हर ले जाती है । वह कामधेनु की तरह सब इच्छाएं पूर्ण कर सकती है । वैसी स्त्री पवित्र गंगा की भांति पापों को नाश कर

देती है और अपने पति के चित्त को हर प्रकार से सन्तुष्ट रखती है ।।२६३।।

मनोज्ञाकृतिसम्पन्नैस्तनुजैः पञ्चभिर्युता ।
व्यद्योततानवद्या सा सरसीव सरोरुहैः ।।२६४।

जब उसके आसपास उसके पाञ्चों सुन्दर पुत्र बैठते थे तो वह उस बावड़ी के समान लगती थी जिसमें कई कमल खिल रहे हों ।।२६४।।

विवाहानन्तरं काचित्सखी तस्या उवाच ताम् ।
सौन्दर्येऽनुपमेया त्वं रूपे तुल्यो वरो न ते ।।२६५।।

जिन दिनों उसका विवाह हुआ था उसके कुछ ही दिन पश्चात् किसी सखी ने उसको कह दिया कि तुम तो सुन्दरता में अनुपम हो, परन्तु तुम्हारा पति तुम्हारे जैसा सुन्दर नहीं है ।।२६५।।

परीहासात्मकं वाक्यं निःसृतं स्वसखीमुखात् ।
आकर्ण्य तां सखीं स्वीयां विनीतं सा वचोऽब्रवीत् ।।२६६।।

हंसी मजाक में उसकी सखी के मुंह मे यह शब्द निकल गए, परन्तु उनको सुनकर वह बड़ी विनय से अपनी सखी को कहने लगी ।।२६६।।

गिरमेकां वदाम्युच्चै र्यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
सुरूपो वा कुरूपो वा दीन दीनोऽपिवा यदि ।।२६७।।

अधिक बातें करने से क्या लाभ ? मैं तुम्हें केवल एक ही बात कहना चाहती हूं कि जो पुरुष मेरा पति है उससे बड़ा मेरे लिए इस संसार में कोई नहीं हो सकता । चाहे मेरा पति रूपवान है या कुरूप, चाहे वह दीनों से भी दीन है, मेरे लिए वही सब कुछ है ।।२६७।।

व्याकुलिता भवस्येवं व्यर्थमेव प्रिये सखि ।
को मे नास्ति गुणः पत्यौ सन्नारीभिरभीप्सितः ॥२६८॥

तू तो मेरी प्यारी सखी है । पर मैं कहती हूं कि तेरी चिन्ता बिल्कुल व्यर्थ है । मेरे पति में ऐसा कौन सा सद्गुण नहीं है जो अच्छी नारियां अपने पति में देखना चाहती हैं ? ॥२६८॥

कुलीनः शिक्षितः सभ्यो वीर्यवान् सौम्यदर्शनः ।
निष्णातोऽवद्यविद्यासु सर्वसौभाग्यसुन्दरः ॥२६९॥

मेरा पति कुलीन है, पढ़ा लिखा है, सभ्य है, तगड़ा है, देखने में भी अच्छा है, युवा है और सब प्रकार से सौभाग्यवान् है ॥२६९॥

अहं स्व स्वामिनो दासी प्रणेया परिचारिका ।
सखि हे मद्वयस्यापि नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥२७०॥

मैं तो अपने स्वामी के चरणों की दासी हूं ! उसकी सेविका हूं । हे सखी, तू तो मुझे अच्छी तरह जानती है, फिर पता नहीं ऐसी बात तुम्हारे मुंह से कैसे निकल गई ? क्या तुम्हें ऐसा कहना उचित था ? ॥२७०॥

करिष्याभि प्रियं भर्तुर्भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ।
सन्तुष्टे भर्तरि श्रेष्ठेतपः सर्वं समाप्यते ॥२७१॥

मैं तो अपने पति की सेवा भक्ति और प्रेम से करूंगी, क्योंकि यदि पति प्रसन्न रहे, तो फिर स्त्री को दूसरा कोई तप अथवा व्रत आदि करने की आवश्यकता ही नहीं रहती ॥२७१॥

गुणवत्पतिसंसर्गाद् यामि स्वल्पापि गौरवम् ।
पुष्पान्तर्गतारेणुर्यथा शिरसि धार्यते ॥२७२॥

मुझ में तो ऐसे कोई विशेष गुण नहीं हैं, परन्तु मेरा पति तो सद्गुणों की खान है । उसके साथ मेरा सम्बन्ध होने से मैं स्वयं को गौरवशालिनी समझ रही हूं । मिट्टी की धूल भी यदि फूल के अन्दर गिर जाए तो उस मिट्टी को भी लोग फूल के साथ ही अपने सिर पर धारण कर लेते हैं ।।२७२।।

श्रवणे भाषणे तस्य दर्शने स्पर्शनेऽथवा ।
द्रवन्ति मेऽन्तरङ्गानि पतिस्तद्वत्सुदुर्लभः ।।२७३।।

पति के साथ बात करते समय, उसकी बातें सुनते समय, उसका दर्शन अथवा स्पर्शमात्र हो जाने से, मेरी तो अन्तरात्मा तक प्रभावित हो जाती है । मैं कहती हूं कि मेरे पति जैसा पति संसार में किसी भाग्यशालिनी का ही होगा ।।२७३।।

पतिर्मेऽस्ति महादेवः पतिर्मे परमेश्वरः ।
पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।।२७४।।

मेरे लिए मेरा पति ही महादेव जैसा पूज्य है, मेरे लिए मेरा पति ही विष्णु है, पति ही ब्रह्मा है, और पति ही परमेश्वर है ।।२७४।।

श्रुत्वा यथोचितां वाणीं नयशालीनतायुतां ।
सखी तस्याः विवर्णाऽभूत् पीतास्या लज्जयावृता ।।२७५।।

इस प्रकार नीति-शालीनता से युक्त उसकी यथोचित वाणी सुनकर उसकी सखी का मुख लज्जा से पीला हो गया और वह कुछ उत्तर न दे सकी ।।२७५।।

यावद् गोदावरी गङ्गा यावद् विन्ध्यहिमाचलौ ।
एवं पुण्याः कथास्तस्या गीयन्ते सज्जनैर्भुवि ।।२७६।।

जब तक पृथिवी पर गङ्गा और गोदावरी आदि नदियां बहती रहेंगी, या जब तक बिन्ध्याचल और हिमालय पर्वत अपने अपने स्थानपर स्थित रहेंगे, उसकी ऐसी पुण्य कथाएं तब तक लोग सुनते तथा दूसरे लोगों को सुनाते रहेंगे ।।२७६।।

स्निग्धमुक्ता कथास्तस्या सुरुक्षं वा रसायनम् ।
पावकम् शमयत्वेव शीतलं वार्यशीतलम् ।।२७७।।

इस प्रकार की कथाएं चाहे आप प्रेम से कहें-सुनें और चाहे रूखे-सूखे तरीके से कहें-सुनें, वे सब कथाएं सभी को मनभावन और प्यारी लगेंगी । अग्नि पर आप चाहे ठण्डा पानी डालें चाहे गर्म पानी, अग्नि तो दोनों दशाओं में शीतल हो जाएगी ।।२७७।।

धर्मज्ञानप्रवीणायास्तस्याः स्वैरकथा अपि ।
संभविष्यन्ति शास्त्राणि गदिता बान्धवान्प्रति ।।२७८।।

नीति और धर्म ज्ञान में उसकी प्रवीणता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि दूसरों के साथ जब कभी वह ज्ञान विषयक साधारण चर्चा या वार्त्तालाप करती थी, तो उसके मुख से निकले हुए वही शब्द शास्त्रों के नीति-वाक्य बन जाते थे ।।२७८।।

पुराभिलषितं बाल्ये मुग्धेन सततं मया ।
यथान्ये बालकाः सर्वे समीहन्ते स्वभावतः ।।२७९।।

जब मैं अभी छोटा बालक था तो मेरे मन में कई अभिलाषाएं उठा करती थीं, वैसी ही इच्छाएं जैसी स्वभावतः सभी छोटे बालक सोचते हैं ।।२७९।।

स्निग्धानुरागसम्पृक्तं सौभाग्यस्नेहसंयुतम् ।
सुखसम्पत्तिसंपन्नं सदनं संभवेन्मम ।।२८०।।

कि मेरा एक सुन्दर-सा घर हो, जिसके सब सदस्य परस्पर

स्नेह, प्रेम और प्यार से रहें, और जिसमें हर प्रकार की सुख सामग्री भी पर्याप्त हो ।।२८०।।

कवीनां शास्त्रविज्ञानां ध्वनीनां तुमुलः स्वनः ।
धर्मशास्त्रप्रवीणानां सर्वदा स्यान्ममालये ।।२८१।।

मेरा घर ऐसा हो कि उसमें सदा ही शास्त्रों के ज्ञाता, धर्म शास्त्र के ज्ञानी, कवि लोगों की ऊंची आवाज़ें सुनाई देती रहें ।।२८१।।

स्मृतीनां वेदशास्त्राणां निनादैर्गर्जितं सदा ।
विद्वत्पादजलैर्नित्यं पंकिलं मे गृहं भवेत् ।।२८२।।

मेरे घर से वेद, शास्त्र स्मृति आदि ग्रन्थों के पाठकी आवाज आती रहे और वहां पढ़े लिखे ब्राह्मण पण्डित लोग सदा आते-जाते रहें ।।२८२।।

धूलिधूसरिताङ्गानां शिशूनां बालचेष्टितैः ।
प्राङ्गणं पूरितं भूयात् क्रीड़ाकौतुकनिःस्वनैः ।।२८३।।

मेरे घर के आंगन में बच्चों की बाललीलाओं से सदैव कोलाहल मचा रहे। और उनके खेलने से धूल उड़-उड़ कर उनके शरीर को मैला करती रहे ।।२८३।।

भार्या चन्द्रमुखी त्वेका सच्चरित्रा भवेन्मम ।
सन्तु तेजस्विनः पुत्रा गुणगौरवगुम्फिताः ।।२८४।।

मेरी स्त्री सच्चरित्र हो, सुन्दर भी हो और मेरे सब पुत्र तेजस्वी और गुणशाली हों ।।२८४।।

सन्तु मित्राणि सर्वाणि पात्राणि सुखदुःखयोः ।
बान्धवाः सत्कुलीनाश्च सौहार्दप्रीतिसंयुताः ।।२८५।।

मेरे मित्र सभी सुख दुःख के साथी हों । मेरे सब बन्धु लोग सत्कुलीन हों और मुझसे प्रेम करते रहें ॥२८५॥

न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं धर्मे बुद्धिर्भवेन्मम ।
इत्याद्याकांक्षितं बाल्ये बहुलं चाप्यतोऽधिकम् ॥२८६॥

मेरे घर में बहुत धन हो, पर ऐसा ही धन हो जो मैंने न्यायपूर्वक कमाया हो। मेरी बुद्धि सदा धर्म कार्यों की ओर रहे । इस प्रकार की अभिलाषाएं मैं अपने बचपन में किया करता था ॥२८६॥

अभावो नास्तु मे गेहे गोरसस्य कदापि च ।
मञ्जुला वाटिकाप्येका चास्तु पुष्पफलान्विता ॥२८७॥

बचपन में मैं यह भी चाहता था कि मेरे घर में दूध दही की कभी भी कमी न रहे । तथा घर में एक वाटिका भी हो जिसमें फूल और फल लगें रहें ॥२९७॥

ग्रीष्मे हेमन्तकाले वा सुखोपकरणैर्युते ।
गृहे मे स्यन्दनाः सन्तु काराख्याः क्षिप्रगामिनः ॥२८८॥

मेरे घर में गर्मी तथा सर्दी में सब सुखों की सामग्री हो, मोटरकार नाम के तेज चलने वाले वाहन भी हों ॥२८८॥

पूर्वजन्मकृतानां सत्कर्मणां फलमेव मे ।
ईश्वरस्येच्छया वापि कृतपार्द्रस्यानुकम्पया ॥२८९॥

या तो मेरे पूर्वजन्म में किए हुए सत्कर्मों के फलस्वरूप या कृपालु ईश्वर की दया से ॥२८९॥

वाल्ये वयसि मुग्धेन यद्यद्वै कांक्षितं मया ।
यथाकालमभूत्सर्वं ध्रुवं सत्यं ममेप्सितम् ॥२९०॥

जो-जो बातें मैं अपने बचपन में सोचा करता था, वह सब बातें धीरे धीरे समयानुसार सच होती गईं ।।२९०।।

स्वप्नो मे मुग्धबालस्य यथार्थत्वं गतो यदा ।
गृहं मेऽप्रतिमं जातं स्वर्गतुल्यं भुवस्तले ।।२९१।।

इस प्रकार बचपन में देखा हुआ मेरा स्वप्न जब सौभाग्यवश पूरा हो गया, तो मेरा घर सचमुच ही पृथ्वीस्थल पर स्वर्ग जैसा प्रतीत होने लगा ।।२९१।।

विनीता धार्मिका: पुत्रा: विद्वांस: पुरुषोत्तमा: ।
अग्रगण्या: सदाचारे नानाविद्याविचक्षणा: ।।२९२।।

मेरे सभी पुत्र धार्मिक, विद्वान्, विनयशील और पुरुषोत्तम हैं । वे सदाचार में किसी से भी कम नहीं हैं। वे नाना प्रकार की विद्याओं में प्रवीण हैं ।।२९२।।

जन्ममुण्डनसंस्कारोपवीतोद्वाहकीर्त्तनै:
पुत्राणामथपुत्रीणां पौत्रपौत्रीगणस्य च ।
विवाहोत्सव संरावै: शोभितं सदनं मम ।
नन्दोद्यानवद्भाति सततं सुमहोत्सवै: ।।२९३।।

अब मेरा घर पुत्रों, पुत्रियों, पौत्रों और पौत्रियों के जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के संकीर्तनों से, तथा अन्य कई प्रकार के उत्सवों, से वैसे ही सुशोभित रहता है जैसे स्वर्ग का नन्दनोद्यान हो ।।२९३।।

हार्मोनियम्सितारादिवाद्ययन्त्रानुनादितम् ।
स्टीर्योयन्त्रगतैर्गीतैर्ध्वनितं भाति भूरिश: ।।२९४।।

मेरे घर से हर समय हरमोनियम, सितार, तबला आदि

वाद्ययन्त्रों की आवाज आती रहती है। अथवा रेडियोग्राम या स्टीर्योग्राम आदि से ध्वनि निकलती रहती है ॥२९४॥

वातानुकूलनोपायकरणे सक्षमः सदा ।
यन्त्राणां साधनानां च संग्रहः सदनेऽस्ति मे ॥२९५॥

मेरे घर में वातानुकूलन करने के लिए कई यन्त्र तथा साधनों का संग्रह रहता है ॥२९५॥

हेमन्ते गृहकक्षा मे सुतापाः सम्भवन्ति ये ।
त एव ग्रीष्मकाले च भवन्ति हिमशीतलाः ॥२९६॥

मेरे घर के कमरे सर्दियों में भी गर्म रहते हैं और वही कमरे गर्मिओं के दिनों में इतने ठंडे होते हैं, जैसे वर्फानी पहाड़ ॥२९६॥

टेलिफोनाख्यसंयत्रमपि मे वर्त्तते गृहे ।
भवामि सुसुखं येन दूरभाषणसक्षमः ॥२९७॥

मेरे घर में टैलीफोन यन्त्र भी है, उसका यह सुख है कि मैं मीलों दूर बैठ कर जहां चाहूं, जिससे चाहूं अपनी सुविधानुसार बातें कर सकता हूं ॥२९७॥

स्कूटर मोटर्काराख्यद्रुतयानसमुच्चयः ।
शोभते मम पुत्राणां पौत्राणां सदनेष्वपि ॥२९८॥

स्कूटर, माटरकार आदि शीघ्र चलने वाले वाहनों का समूह तो मेरे पुत्रों और पौत्रों के घर में भी है ॥२९८॥

दूरदर्शनयन्त्रं चालङ्करोति गृहं मम ।
चलचित्राणि पश्यामि दूरस्थोऽपि यथासुखम् ॥२९९॥

मेरे घर में दूरदर्शन यन्त्र भी है, जिससे मैं आराम से घर में बैठा चलचित्रों को देख सकता हूं ॥२९९॥

रेफ्रिजिरेटराख्यानि शीतोपकरणान्यपि ।
अलंकुर्वन्ति मद् गेहं पुत्राणां सदनानि च ॥३००॥

रेफ़िजिरेटर आदि शीतोपकरण भी मेरे तथा मेरे पुत्रों के घर में कई हैं ॥३००॥

भार्या चन्द्रमुखी सती गुणवती स्नेहप्रिया सेविक
पञ्चैते तनुजा निसर्गगुणिनो भक्ताः पितुः सर्वदा ।
मानुष्यं द्विजवंशजन्म विभवो दीर्घायुरारोग्यता
किं मे नास्ति गृहे सुखं सुकृतिभिः
स्वर्गे तु यन्मृग्यते ॥३०१॥

मेरी स्त्री सुन्दरी है । गुणवती; सती और सेविका है। पांच पुत्र हैं, जो स्वभाव से ही गुणी हैं और मेरे भक्त भी हैं। मुझे तो भाग्य से मनुष्य का उत्तम शरीर भी प्राप्त हुआ है और उच्च ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म भी हुआ है। मेरे घर में पूर्ण ऐश्वर्य है, मैं दीर्घ आयू भी भोग रहा हूं । मुझे कोई विशेष रोग भी नहीं है । इस प्रकार मैं सोचता हूं कि बह कौन सा ऐसा सुख है जो मुझे इस पृथ्वी पर ही और अपने घर के अन्दर ही प्राप्त नहीं है । अन्य लोग तो ऐसे सुखों को स्वर्ग में जाकर प्राप्त करना चाहते हैं ॥३०१॥

नानासौख्यप्रदे नित्यं सत्यप्यन्यपरिच्छदे ।
भार्यानिधनसन्तप्तो दुःखं चानुभवाम्यहम् ॥३०२॥

मेरे घर में अब भी अनेक प्रकार की सुखसामग्री है और अन्य सुख के साधन भी हैं । पर पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मन

इतना दुःखी हो गया है कि मेरे लिए वे सब वस्तुएं मुझे कोई सुख नहीं देतीं ।।३०२।।

न पश्याम्यद्य तं लोकं यत्र तत्सन्निधौ मम ।
दिनं गतं निशा याता सततं हसतो भृशम् ।।३०३।।

अब तो मुझे यह संसार पहले जैसा दिखाई नहीं दे रहा जहां पत्नी के संग मेरे दिन और रात हंसते हुए व्यतीत हो जाते थे ।।३०३।।

गतः कुत्र स संसारः सर्वसौभाग्यसुन्दरः ।
संसारः साम्प्रतं सर्वो ह्यसार इव भासते ।।३०४।।

पता नहीं, मेरा वह संसार अब कहां चला गया, जा पहले मेरे लिये इतना सुन्दर तथा सौभाग्यपूर्ण हुआ करता था ? अब तो मुझे ऐसा लगता है कि इस संसार में कोई सुख नहीं रहा और सब कुछ वेस्वाद हो गया है ।।३०४।।

गन्धर्वनगराकारं क्षणान्नष्टं जगन्मम ।
रञ्जितं विविधैर्वर्णैरिन्द्रचापं व्यलीयत ।।३०५।।

इस प्रकार वह स्वर्गतुल्य वातावरण जो मैंने यत्न से बना रखा था, किसी गन्धर्वनगरी की तरह एक क्षण में नष्ट हो गया, जैसे कई रंगों से बना हुआ इन्द्रधनुष आकाश में विलीन हो जाता है ।।३०५।।

भुक्त्वा भोगांश्चिरं सर्वान् नास्ति कापि स्पृहा मम ।
भार्या त्वापि गता स्वर्गं कार्यं किमपि नास्ति मे ३०६।।

इस संसार में आकर मैं हर प्रकार के सुखों को इतनी पर्याप्त मात्रा में भोग चुका हूं कि और अधिक सुख भोगने की कोई

इच्छा नहीं रही । कोई भी ऐसा काम नहीं रहा, जो मुझे करना चाहिए था। अब तो मेरी पत्नी भी नहीं रही ॥३०६॥

अधुना करणीयं मे नकिञ्चिदवशिष्यते ।
आश्रयो मे सहायो मे तन्निभो नैव दृश्यते ॥३०७॥

अब मैं क्या करूं यह मुझ को कुछ सूझ नहीं रहा, क्यों कि मेरा आश्रय, मुझे सहारा देने वाला, उस जैसा, मुझे अन्य कोई भी दिखाई नहीं दे हा ॥३०७॥

जीवनं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृतः ।
सुखे दुःखे वयस्याऽसौ यतो नासाद्यते मया ॥३०८॥

मेरे दुःख सुख की साथिन अब मुझे कहीं भी दिखाई नहीं देती। इस लिए शोक से विह्वल हो कर मैं भी अपनी मौत को आवाज़ें दे रहा हूं ॥३०८॥

निःसत्वं च निरुत्साहं मन्येऽहं जीवनं निजम् ।
लोहकारस्य भस्त्रेव श्वासा आयान्ति यान्ति मे ॥३०९॥

आज कल मेरा जीवन असार और उत्साहहीन हो चुका है। मेरे शरीर में श्वास उसी प्रकार आ जा रहे हैं जैसे किसी लोहार की धौकनी में हवा आती भी है, और फिर बाहर निकल जाती है ॥३०९॥

असंख्या दारहीनास्ते नराः सन्ति मुमूर्षवः ।
म्रियमाणा यथेच्छं नो म्रियन्तेऽभाग्यशालिनः ॥३१०॥

मेरे जैसे भार्याविहीन पुरुष चाहते तो हैं कि वह भी मर जाएं, परन्तु मरने की इच्छा रखते हुए भी वह मर नहीं सकते। इससे दुर्भाग्य पूर्ण बात और क्या हो सकती है ! ॥३१०॥

संसारेऽस्मिन्ननेके ते लोका: शोकातुरा: किल ।
एकाकी नाहमेवेति तर्क: शोकापहारक: ॥३११॥

इस संसार में अनेकों ऐसे लोग होगें जो किसी प्रिय जन की मृत्यु के शोक के कारण दु:खी हो रहे हैं। मैं कोई अकेला नहीं हूं । जब मैं इस प्रकार सोचता हूं तो मेरा दु:ख कुछ सीमा तक कम हो जाता है ॥३११॥

असम्भवा विमुक्तिश्च यमपाशनिबन्धनात् ।
अकामाच्च पिवन्तीह कालदत्तं विषं जना: ॥३१२॥

यमराज द्वारा फैलाए हुए जाल से मुक्ति प्राप्त करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। सब को मृत्यु द्वारा भेंट किया हुआ विष का प्याला इच्छा न होते हुए भी पीना पड़ता है ॥३१२॥

अकामं वा सकामं वा मृत्युदत्तं हलाहलम् ।
न पीतं येन मर्त्येन मया दृष्टो न कोऽपि स: ॥३१३॥

मैंने आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा, जिसने काल-भगवान द्वारा दिया हुआ विष का प्याला न पिया हो, चाहे उस विष को पीने की उसकी अपनी इच्छा हो या न हो ॥३१३॥

अहमेवाद्वितीयो न भग्नाशो भुवि मानव: ।
असङ्ख्याता नराश्चात्र विद्यन्तेऽप्राप्तवाञ्छिता: ॥३१४॥

इस संसार में केवल मैं ही ऐसा मनुष्य नहीं हूं जिस की सारी आशाएं इस तरह मिट्टी में मिल गई हों। यहां अनगिनत मनुष्य मेरे जैसे होगें जिनकी सभी इच्छाएं पूर्ण नहीं हुईं ॥३१४॥

एकदा स्वपितृव्यस्य पुत्र्या साकमगात् सती ।
राजस्थानप्रदेशान्तर्जैसलमेरपुरं वरम् ॥३१५॥

एक बार अपनी वहन के साथ राजस्थान प्रदेश में वह जैसलमेर नगर देखने चली गई ॥३१५॥

निदाधसमये तत्र सूर्यातपविपीडिता ।
स्थित्वा नातिचिरं रम्यं पुरं जोधपुरंगता ॥३१६॥

उन दिनों गर्मी की ऋतु थी और वहां इतनी अधिक गर्मी पड़ रही थी कि जैसलमेर में वह अधिक दिन नहीं ठहर सकी और कुछ ही दिनों वाद वहां से लौट कर सुन्दर नगर जोधपुर में आ गई ॥३१६॥

तत्राप्यसहमाना सा निदाघस्य प्रचण्डताम् ।
रमणीयं समागच्छत् पुरं जयपुरं ततः ॥३१७॥

वहां भी तो उन दिनों शहर में बड़ी जोर की गर्मी थी। इसलिए वहां से भी वह जल्दी लौट पड़ी और सुहावने नगर जयपुर चली आई ॥३१७॥

दृष्टानि राजहर्म्याणि विस्तीर्णा राजवीथयः ।
हवामहलमित्याख्यं राजसौधमलौकिकम् ॥३१८॥

वहां पहुंचकर उसने देखा कि बड़े भव्य राजभवन बने हैं। सीधी सड़कें बहुत चौड़ी और साफ सुथरी हैं। उसी शहर में उसने हवामहल नाम से विख्यात अलौकिक राजभवन भी देखा ॥३१८॥

पवर्ताग्रस्थितं दुर्गम् राजपुत्रैर्विनिर्मितम् ।
तत्रत्यं शिल्पनिर्माणकौशलं वीक्ष्यविस्मिता ॥३१९॥

राजपूत महाराजाओं द्वारा निर्मित एक किला भी उसने वहां देखा, जो एक पर्वत की ऊंची चोटी पर बना हुआ था और

जिसका शिल्प निर्माण बड़ा अद्भुत था। उस को देखकर वह बड़ी हैरान हुई ।।३१९।।

दृष्ट्वा बहूनि चान्यानि भव्यानि भवनानि च ।
स्थानानि दर्शनीयानि प्रत्यागता ततः पुनः ।।३२०।।

जयपुर शहर में उसने और भी बहुत से सुन्दर भवन देखे और सब दर्शनीय स्थानों को भली प्रकार देख-भाल कर वहां से भी वापस चली आई ।।३२०।।

अजमेरपुरीं रम्यां नानासौधविराजिताम् ।
वीक्ष्य ध्यानस्थलं तत्र चिश्तीपीरमहात्मनः ।।३२१।।

फिर वह राजस्थान प्रदेश के अजमेर नाम के नगर में भी गई । वहां उसने चिश्ती पीर महात्मा की समाधि के भी दर्शन किए ।।३२१।।

निरगात् पुष्करं तीर्थं ब्रह्मणो मन्दिरं तदा ।
स्नात्वा सरोवरे पुण्ये प्रत्यागच्छत् पुनस्ततः ।।३२२।।

फिर वह पुष्कर तीर्थ में भी गई । वहां पर ब्रह्मा देवता का मन्दिर एक पवित्र सरोवर में बना हुआ है। उस पवित्र सरोवर में स्नान करने के पश्चात् वहां से वापिस आ गई ।।३२२।।

जगन्नाथपुरीतीर्थं पत्या साकं गतैकदा ।
स्नात्वा महोदधौ तत्र महत्पुण्यं समर्जयत् ।।३२३।।

फिर एक बार वह अपने पति के साथ जगन्नाथपुरी की यात्रा पर गई और वहां उसने देवमूर्तियों का दर्शन करके समुद्रस्नान का पुण्य प्राप्त किया ।।३२३।।

अजन्तायामलोरायां गुहामन्दिरनिर्मिताः ।
अपश्यदद्भुता मूर्तीः खजुराहोसुरालये ।।३२४।।

वहां से वह अजन्ता और अलोरा नाम के स्थान देखने गई जहां पर्वतों के अन्दर की गुफाओं में सुन्दर मूर्तियां बनी हैं। वहीं से वह खजुराहो मन्दिरों में भी हो आई, जहां अद्भुत प्रकार की मूर्तियां बनी थीं ॥३२४॥

पार्थिवेषु च तीर्थेषु स्नातुं सा प्रस्थिता यदा ।
अवर्षन् दिव्यतीर्थानि नूनमीर्ष्याचिकीर्षया ॥३२५॥

जब वह उन तीर्थ स्थानों पर स्नान करने के लिए जाती थी जो पृथ्वी लोक पर बने हुए हैं, तब स्वर्ग-लोक में बने तीर्थों के मन में बड़ी ईर्ष्या होती थी कि वह हमारे दर्शन करने क्यों नहीं आती ? तब वह तीर्थ अपनी ईर्षा तथा खीझ का प्रदशन मूसलाधार बारिशों द्वारा कर देते थे ॥३२५।

दिल्लीत्यादीनि मुख्यानि प्रान्ते प्रान्ते पुराणि च ।
दृष्टानि तानि कृत्स्नानि तया तन्व्याः पुनः पुनः ॥३२६॥

भारत के कई प्रांतों में अनेक प्रसिद्ध नगर बने हैं, जैसे दिल्ली आदि। उन सब बड़े-बड़े नगरों में जाकर उसने बार-बार सैर की थी ।।३२६॥

लखनऊनगरे कृत्वा वासं पुत्रस्य सन्निधौ ।
वाराणसीमयोध्यां च गता पुण्याभिलाषिणी ॥३२७॥

उसका एक पुत्र उन दिनों लखनऊ नगर में रहता था। वह उसके पास गई और वहीं से वाराणसी (काशी) और अयोध्या की यात्रा भी कर आई। ३२७॥

रानीखेतगिरौ रम्ये पश्यन्ती पर्वतस्थलीः ।
व्यत्यापयद्दिनान्यार्या सा सुखं तत्र कानिचिद् ॥३२८॥

वहां से वह हिमालय पर्वत में स्थित रानीखेत नाम के

मनोमुग्धनारी स्थान पर भी कुछ दिन रही, जो पर्वतों के अन्दर वड़ा रमणीक स्थान है। वहां पर्वतों के रम्य, सुन्दर तथा भव्य दृश्य देख कर बहुत प्रसन्न हुई ॥३२८॥

चन्द्रभागानदीतीरे रम्ये रामवने पुरे ।
यथाकामं स्थिता तत्र प्रियपुत्रेण सेविता ॥३२९॥

उसका दूसरा पुत्र चन्द्रभागा नदी के तीर पर स्थित रामवन की सुन्दर नगरी में रहता था। वह उसके पास भी गई। और उस सुन्दर नगरी में कई दिन विताए, जहां उसका पुत्र हर प्रकार की सेवा को हाजिर रहता था ॥३२९॥

कोटाख्यनगरप्रान्ते राणाप्रतापसागरम् ।
जलसंस्तम्भकं सेतुं विचित्रं सा न्यशामयत् ॥३३०॥

उस का सब से छोटा पुत्र उन दिनों राजस्थान के कोटा नगर में रहता था, जहां पर राणा प्रताप सागर नाम का विशाल और विचित्र डैम (जल सेतु) बना हुआ है। ॥३३०॥

तत्रस्थितेन पुत्रेण यंत्राभियंत्रिणा सह ।
अणुशक्तेश्च संस्थानं साऽदर्शज्जातविस्मया ॥३३१॥

उसका पुत्र उन दिनों कोटा नगर में अणुशक्ति सस्थान में इन्जीनियर था। उसके साथ ही वहां उसने अणुशक्ति को तैयार करने वाले यन्त्र देखे और उन्हें देखकर आश्चर्य का अनुभव किया ॥३३१॥

पुत्रगेह उषित्वा सा दशमासाधिकं तदा ।
दृष्ट्वा स्थानानि रम्याणि जम्मूनगरमागता ॥३३२॥

वहा वह अपने पुत्र के पास दस महीनों से अधिक रही

और सब दर्शनीय स्थान देखने के पश्चात् जम्मू वापिस आ गई ॥३३२॥

शैलप्रान्ते गता तन्वी सरहूईं सरोवरे ।
कृतनौकाविहारा सा प्रत्यागच्छद् गृहं स्वकम् ॥३३३॥

एक वार उसने पहाड़ों में स्थित सरहूई सरोवर की यात्रा की और वहां नौका विहार करके बहुत प्रसन्न हुई । फिर वापिस जम्मू अपने घर आ गयी ॥३३३॥

न स देशो न कान्तारो न तत्स्थलं न साटवी ।
न सा नदी न तत्क्षेत्रं न स ग्रामो न सा पुरी ॥३३४॥

ऐसा कोई देश नहीं था, न ही ऐसा कोई वन, जंगल आदि था, न नदी, न कोई अन्य स्थल था, न क्षेत्र था, न ग्राम था, न ही ही कोई ऐसा शहर था ॥३३४॥

न सा लीला न सा यात्रा न तत्तीर्थं न तत्सरः ।
पतिस्तस्या गतो यत्र विना दयितया तया ॥३३५॥

न कोई तीर्थ वा सरोवर था, न कोई यात्रा या खेल तमाशा था, जहां उसका पति उसको अपने साथ ले कर न गया हो ॥३३५॥

तीर्थयात्रोत्सुकं तस्या यदा यदाऽभवन्मनः ।
जगाम तत्क्षणं तत्र पुण्यार्जनपिपासया ॥३३६॥

जब कभी उसका मन तीर्थयात्रा करने को उत्सुक होता था, तो वह पुण्य प्राप्त करने केलिए झट तैयार हो कर वहां पहुंच जाती थी ॥३३६॥

अविन्दद् दुर्गमं मार्गं तीर्थयात्राक्रमे न सा ।
अभ्रंलिहान्नगान्नासौ न च कूलङ्कषा नदीः ॥३३७॥

जब वह किसी तीर्थ पर जाने केलिए तैयार हो जाती थी तो फिर यह नहीं सोचती थी कि वहां जाने के मार्ग में कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी, ऊंचे पहाड़ लांघने पड़ेंगे और नदी नाले भी पार करने पड़ेंगे ।।३३७।

अनेकौषधिपुष्पाणि जिघ्रन्ती सुखदानि सा ।
संश्रृण्वती कथा: पुण्या: स्नात्वा तीर्थोदकेषु च ।।३३८।।

वहां जाकर अनेक प्रकार के वनौषधियों तथा फूलों को सूंघती, पुण्य कथाओं को सुनती, तीर्थ सम्बन्धी पवित्र कथाओं का श्रवण करती हुई, तीर्थों के पवित्र जल में नहाती ।।३३८।।

पिवन्ती शीतलं तोयं पश्यन्ती वनश्रियम् ।
तीर्थयात्रां विधायेत्थं सदनं स्वं समागता ।।३३९।।

और वहां के ठण्डे जलको पीती, वनों की शोभा देखती हुई, तीर्थ यात्रा करके वापिस जम्मू अपने घर पहुंच जाती थी ।।३३९।।

तीर्थाटनक्रमे तन्वीमेकदा जाह्नवीं गताम् ।
जाह्नवीसीकरासिक्तवातव्यालोलकुन्तलाम् ।।३४०।।

एक बार तीर्थों की यात्रा करते करते वह हरिद्वार चली गई। वहां पर वायु द्वारा उड़ाये हुए गंगा के जल के छींट उसके लहलहाते बालों पर पड़ रहे थे ।।३४०।।

बद्धाञ्जलिं स्थितां वीक्ष्य ध्यानमुद्रितलोचनाम् ।
जिज्ञासयाऽवदम् चाहं ध्यानमग्नां नदीतटे ।।३४१।।

उसने दोनों हाथ जोड़े हुए थे और नदी के तट पर खड़े हो हो कर, आंखें बन्द करके, ध्यानमग्न अवस्था में खड़ी थी। उसे इस प्रकार वहां खड़ी देख कर मैंने पूछा ।।३४१।।

पतिरस्ति धनं चास्ति वैभवं बहुलं तव ।

प्रभुत्वं चाति दीर्घायू रोगाभावोऽपि ते सदा ।।३४२।।

हे देवि, तुम्हारा पति तुम्हारे पास खड़ा है। धन भी तुम्हारे पास काफी है । तुम ऐश्वर्यशालिनी हो । तुम्हारा प्रभुत्व भी है। दीर्घ आयु वाली हो । कोई विशेष रोग भी तो तुम्हें नहीं है ।।३४२।।

पुत्राः पुत्र्यौ यथा तेषां पुत्राः पुत्र्यस्तथैव च ।

किं नु नास्ति पृथिव्यां ते यदर्थं प्रार्थ्यते त्वया ।।३४३।।

तुम्हारे पुत्र भी हैं, पुत्रियां भी है, फिर उनके पुत्र और पुत्रियां भी हैं। इस पृथिवी पर वह कौन सी वस्तु ऐसी है, जो तुम्हारे पास नहीं है, जिसे तुम, हाथ जोड़ कर, भगवान से मांग रही हो ।।३४३।।

अवोचत्सादरं साध्वी निपत्य ममपादयोः ।

न त्वं जानासि हे नाथ स्पृहणीयं किमस्ति मे ।।३४४।।

मेरी बात सुन कर वह मेरे पावों में गिर पड़ी तथा आदर सहित वोली नाथ, आप नहीं जानते कि मैं भगवान से क्या मांग रही हूं ।।३४४।

नानाविधेषु भोगेषु नास्ति काऽपि स्पृहा मम ।

प्रार्थये न त्वहं स्वर्गं न वाऽपि धनसम्पदः ।।३४५।।

मुझे नाना प्रकार के सांसारक भोगों की इच्छा नहीं है । मैं स्वर्ग प्राप्त करने केलिए भी प्रार्थना नहीं कर रही। न ही बहुत अधिक धन अथवा सम्पति की कोई इच्छा है ।।३४५।।

केवलं चाभिकांक्षामि भवेयं सेविका तव ।
अर्चिका वल्लभा चैवं नूनं जन्मान्तरेष्वपि ।।३४६।।

मैं भगवती गंगा मैया से केवल इतना ही मांग रही हूं कि भविष्य में जो भी जन्म मैं धारण करूं, उसमें भी इसी प्रकार आपकी प्रिया सेविका तथा पुजारिन बनी रहूं जैसी आज इस समय हूं ।।३४६।।

एकाऽन्यापि स्पृहा नाथ विद्यते मम मानसे ।
कामयेऽहं तनुत्यागः पत्युरंके भवेन्मम ।।३४७।।

हे नाथ, मेरे मन में दूसरी बलवती इच्छा है कि जब भी मेरी मृत्यु हो, उस समय मेरा सिर आपकी की गोद में हो ।।३४७।।

तव जाया सदा चास्मि प्राप्नुयाम् त्वां पुनः पुनः ।
न भूता न भविष्यामि नान्यस्य कुत्रचित्क्वचित् ।।३४८।।

मैं तो सदा आपकी पत्नी होना चाहती हूं. और मेरी यही इच्छा है कि आप अगले जन्मों में भी मेरे ही पति बनें। मैं न तो कभी दूसरे की पत्नी वनी थी, और न ही भबिष्य में बनना चाहती हूं ।।३४८।।

इत्युक्त्वा चाश्रुधाराभिर्निपत्य मम पादयोः ।
गङ्गाम्भोमार्जितौ पादौ पावनावकरोद् भृशम् ।।३४९।।

इतनी बात कह कर वह मेरे पांवों में गिर पड़ी और अपने पवित्र आंसुओं की धारा बहा कर मेरे उन चरणों को पवित्र करने लगी जो पहले गंगा जल के स्पर्श से पवित्र हो चुके थे ।।३४९।।

पतिव्रता गुणश्रेष्ठा पत्नी यस्य तथाविधा ।
तपांसि परितप्तानि पुरा तेनेति निश्चितम् ।।३५०।।

मुझ को ऐसी पतिव्रता और गुणवती पत्नी मिली मैंने किसी जन्म में अवश्य अनेकों घोर तपस्याएं की होगी, इस बात में रत्ती भर सन्देह नहीं हो सकता ॥३५०॥

वार्त्तालापे सखीभिः सा स्नपयामास सन्ततम् ।

देहं चित्तं सखीनां स्वभारतीमधुनिर्झरैः ॥३५१॥

जब कभी वह अपनी सखी सहेलियों के साथ वार्त्तालाप कर रही होती थी, तो उसकी अत्यन्त मीठी तथा कोमल आवाज सुन कर उसकी सखियों की अन्तरात्मा उसी प्रकार स्वच्छ एवं शान्त हो जाती थी जिस प्रकार झर-झर बहते किसी झरने के नीचे बैठ कर स्नान करने से मन एवं शरीर शीतल हो जाते हैं ॥३५१॥

अप्रीणयत्सगोत्रान्सा भव्याभिः संविभूतिभिः ।

कलाभिरमृतार्द्राभि र्भ-गणान् कौमुदी यथा ॥३५२॥

वह अपने सब रिश्तेदारों को धनधान्य आदि का दान करके सदा ही संतुष्ट रखती थी, जैसे चन्द्रमा की चांदनी अपनी अमृत पूर्ण किरणों से नक्षत्र अथवा सितारों के समूह को प्रसन्न रखती है ॥३५२॥

सुखसौन्दर्यसम्पन्ना धनैर्धान्यैर्विभूषिताः ।

पुत्रैः पौत्रैर्वृता वामाः कति सन्ति हि तत्समाः ॥३५३॥

संसार में उसके समान स्त्रियों की संख्या कितनी होगी, जिनके पास मनवांछित धन हो, विपुल धान्य भी हो, समग्र अच्छे गुण भी हों, अपार सुख भी हो, अनुपम सुन्दरता भी हो और वे पुत्रों और पौत्रों से सुशोभित भी हों ॥३५३॥

कति कति न सुरूपदर्पमत्ताः
प्रतिनगरं प्रतिदेशमिन्दुमुख्यः ।
नयविनयमृदुस्वभावरम्या
कमलमुखी न हि तत्समा धरायाम् ॥३५४॥

वैसे तो प्रत्येक देश और हर नगर में अपने सौन्दर्य पर अभिमान करने वाली हजारों स्त्रियां दिखाई देती हैं, परन्तु उसके समान विनयशील और मीठे स्वभाव वाली स्त्री आपने कभी देखी न होगी ॥३५४॥

मम स्वप्नेऽपि वैदुष्यमोहो नास्ति परं त्वहम् ।
गुणानुवर्णनात्तस्या जातः पण्डितसेवकः ॥३५५॥

उस में अनेकों सद्गुण थे । उनमें से कुछ का वर्णन करने से ही मेरे जैसे अकिञ्चन पुरुष की गिनती भी उन पुरुषों में हो गई, जिनको विद्वान् पण्डितों के दास बन जाने पर गौरव है । मुझे तो कभी सुपने में भी यह गुमान न हुआ था कि मैं पढ़ने योग्य चार अक्षर लिख सकता हूं ॥३५५॥

तां सम्प्राप्य गुणाः सर्वेऽप्यलभन्ताधिकां श्रियम् ।
चन्द्रिकामिव संप्राप्य नीलोत्पलसमुच्चयः ॥३५६॥

जितनी शोभा नील कमल के फूलों की उस समय होती है जब उन्हें चांद की चांदनी मिल जाती है, उतनी ही शोभा सब सद्गुणों को उस समय प्राप्त होती थी जब वे सद्गुण उसे प्राप्त कर लेते थे ॥३५६॥

वसन्तागमनामोदं व्यदधाच्च तदागमः ।
मधुमासावसानं च तत्प्रस्थानं दिशत्यदः ॥२५७॥

उसकी उपस्थिति से सारा प्राकृतिक वातावरण इस तरह लहलहा उठता था जैसे बसन्त ऋतु के आगमन से सारे संसार में हो जाता है, परन्तु उसके उठकर चले जाने से तो ऐसे लगता है जैसे बसन्त ऋतु समाप्त हो गई हो ॥३५७॥

अकिंचने भर्तरि मादृशे यत्
सदानुरक्ता मनसा प्रिया सा ।
मन्ये पुराजन्मकृतस्य कस्याप्युत्कृष्ट-
पुण्यस्य वरं विपाकम् ॥३५८॥

उस जैसी गुणवती पत्नी को मेरा जैसा गुणहीन, पति मिल गया । फिर भी वह मेरे साथ इतना आदर पूर्ण प्रेमभाव रखती थी । इसका केवल एक ही कारण हो सकता है कि मैंने किसी जन्म में किसी पर बड़ा अधिक उपकार किया होगा जिसके बदले में मुझे उस जैसी पतिव्रता पत्नी मिल गयी ॥३५८॥

यत्पुर्हितकराण्येव कृत्वा कार्याणि यत्नत: ।
न सा प्राख्यापयत्साध्वी तद्वत्पत्नी सुदुर्लभा ॥३५९॥

साधारण स्त्रियां यदि कोई ऐसा काम करती हैं जिससे उनके पति को कोई लाभ हो तो वे अपना बड़प्पन दिखाने के लिए पति या दूसरों के सामने हर समय उस काम का बखान करती रहती हैं । पर इसके विपरीत यदि इस प्रकार का कोई काम मेरी पत्नी करती थी, जिससे उसके पति को लाभ होना, उसकी ख्याति होती, या यश वढ़ता तो वह पति या किसी दूसरे के सामने, इस विषय में अपने मुख से एक शब्द तक नहीं निकालती थी । इस प्रकार की गुणशालिनी स्त्रियां हर किसी को कहां मिल सकती हैं ? ॥३५९॥

सद्रत्नदीपिकातुल्या परोपकरणे रता ।
अपेक्षत न सा स्नेहं न पात्रं न दशान्तरम् ॥३६१॥

वह सदा दूसरों के हित के लिए काम करती रहती थी, उस रत्नों से बने हुए दीपक के समान, जिसको न तो स्नेह (तेल) की जरूरत होती है, न पात्र की, न ही दशा (बाती) की ॥२६१॥

कमठकुलाचलदिग्गजफणिपतिविधृतापि
चलति वसुधेयम् ।
चलति न सत्यास्तस्याः प्रतिपन्नं
युगान्तकालेऽपि ॥३६२॥

यह प्रसिद्ध है कि इस पृथिवी को दशों दिशाओं में स्थित कुछ हाथियों ने, अथवा कछुओं ने, अथवा शेषनाग ने उठाया हुआ है। इसलिए धरती अपने स्थान से नहीं हिल सकती। परन्तु यदि पृथिवी अपने नियत स्थान से कभी हिल भी जाए, तब भी उस सती नारी के मुख से निकला हुआ वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता था ॥३६२॥

सम्पत्तौ यन्मनस्तस्या पद्मपत्रसुकोमलम् ।
विपत्तौ तन् महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥३६३॥

ऐश्वर्य के समय उसका चित्त इतना कोमल हो जाता था जैसे कमल फूल का पत्ता, और विपत्ति पड़ने पर उसका चित्त इतना कर्कश (सख्त) होता था जितना किसी पहाड़ की चट्टान ॥३६३॥

कुलस्त्रीणां सभामध्ये रागद्वेषविवर्जिता ।
वचः सत्यं सदा ब्रूते सर्वेषां यद्धितं प्रियम् ॥३६४॥

वह उच्च कुल की स्त्रियों की सभा में बैठती थी, तो केवल ऐसी ही बातें करती थी जो सब के हित में हों और सबको प्यारी लगें, क्योंकि उसके मन में किसी के लिए न तो द्वेष था, और न ही विशेष अनुराग ।।३६४।।

सम्भोजनं समालापं सम्प्रश्नं सुसमागमम् ।
अभिजातकुलस्त्रीभिरकरोद्धर्मचारिणी ।।३६५।।

वह धर्मचारिणी थी, इसलिए उसका उठना, बैठना, खाना पीना, बातचीत करना आदि सब व्यवहार सदा ऊंचे कुल की स्त्रियों से ही होता था ।।३६५।।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा नृपाः कुर्वन्ति दिग्जयम् ।
अत्यक्रमन्नृपान्सर्वाञ्जित्वात्मानं तपस्विनी ।।३६६।।

राजा लोग तो सैंकड़ों अश्वमेध यज्ञ कर के संसार को जीतते हैं परन्तु उस तपस्विनी ने अपनी ही इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त करके अश्वमेध करने वाले राजाओं को भी हरा दिया था ।।३६६।।

कुलाङ्गना घोरविपद्गताऽपि
न नीचकर्माणि समाचरत्सा ।
मृगान्परित्यज्य मृगेन्द्रजाया
वुभुक्षिता खादति किं तृणानि ।।३६७।।

वह उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण विपत्ति में पड़ कर भी कोई नीच काम नहीं करती थी । शेरनी चाहे कितनी ही भूखी क्यों न हो, क्या वह जंगल के जीवों को छोड़ कर कभी घास खालेगी ।।३६७।।

तस्याः पदं प्राप्तुमशक्नुवन्त्यो-
निन्दन्ति यास्तामतिमत्सरेण ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धा यथान्धेन विनीयमानाः ॥३६८॥

जो स्त्रियां उसकी बराबरी न कर सकने के कारण कभी कभी द्वेष के कारण उसकी निन्दा करती थीं वह उन मूर्ख अन्धों की तरह इधर-उधर धक्के खाती फिरती थी जिनका नेतृत्व दूसरे अन्धे लोग कर रहे हों ॥३६८॥

अवदत्प्रियमेव सदाविप्रियमाकर्ण्य साध्यसाधुभ्यः ।
पिबति पयोधेः क्षारं
विसृजति मधुरं जलं यथा वृष्टिः ॥३६९॥

बुरे लोगों की कड़वी बातें सुनकर भी वह कड़वा उत्तर नहीं देती थी, बल्कि बड़ी मीठी वाणी बोलती थी । बादल समुद्र से तो खारा पानी पी लेते हैं परन्तु जब बारिश करते हैं तो मीठे जल की धारा बहा देते हैं ॥३६९॥

यच्छास्त्रमुशना वेद यच्च वेद बृहस्पतिः ।
निसर्गात्पण्डिताऽज्ञासीदधिकं तु तयोरपि ॥३७०॥

वेद शास्त्रों का जितना ज्ञान शुक्लाचार्य जी को है और देवताओं के गुरु बृहस्पति जी को जितना ज्ञान है, उन दोनों से अधिक उस अकेली को था, क्योंकि वह स्वभावतः ही विदुषी थी ॥३७०॥

सदृशं चानुरूपं च कुलस्य किल चात्मनः ।
अकरोदित्यतः पत्युः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥३७१॥

उसके सभी कार्य अपने पति की इच्छा के अनुसार और ऊंचे कूल की स्त्रियों के सदाचरण के अनुरूप होते थे। इसी लिए वह अपने पति को प्राणों से प्यारी लगती थी ।।३७१।।

व्रतेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
सात्यक्रमन्नैजसतीत्वभावात्
स्वीयैः सुचारित्र्यगुणैरशेषम् ।।३७२।।

व्रत करने से, यज्ञ-हवनों से, तप करने से और दान करने से बड़ा पुण्य फल मिलता है, परन्तु उससे भी अधिक फल उसने पतिव्रत से तथा चरित्रवती होने से प्राप्त कर लिया ।।३७२।।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
अनिशं सेवया पत्युस्तयाऽऽप्तं लीलया किल ।।३७३।।

दूसरी स्त्रियों को जो फल तप, योग और कठिन समाधियों के पश्चात् मिलता है वह फल उसको केवल अपने पति की सेवा करने से बड़ी आसानी से प्राप्त होता रहता था ।।३७३।।

चिन्ता यशसि न वपुषि व्यसनं
शास्त्रेषु सत्कलाभ्यासे ।
परनिन्दापरिविमुखाऽप्रतिमा लोकत्रये देवी ।।३७४।।

उसको स्वयं अपने शरीर की रत्ती भर परवाह नहीं थी, पर उसे यथाशक्ति यश कमाने की बड़ी चिन्ता रहती थी। उसको यदि कोई व्यसन था, तो शास्त्र पढ़ने का था या किसी कला सीखने के लिए। दूसरों की निन्दा करने से उसे घृणा थी। ऐसी देवी तीनों लोकों में नहीं मिलती ।।३७४।।

परोपकरणं लोके कुर्वन्ति सज्जनाः कथम् ।
इति स्वीयैः सदाचारैरुपदिष्टं तया स्वयम् ॥३७५॥

सज्जन लोग संसार में दूसरों का कैसे उपकार करते हैं यह काम केवल मुख द्वारा उपदेश न देकर वल्कि दूसरों पर स्वयं उपकार करके वह लोगों को प्रत्यक्ष सिखला देती थी ॥३७५॥

विस्मृत्यात्मदुःखानि सर्वभूतदयावती ।
न्यवारयत् परक्लेशं स्वप्राणैरपि सा सती ॥३७६॥

दूसरे लोगों को दुःखी देखकर उसका हृदय दया से भर उठता था। तव वह अपने प्राणों को खतरे में डाल कर भी उनके दुःख हरने में कभी पीछे नहीं हटती थी ॥३७६॥

पतिव्रतं चारुरसा च वाणी
सुरार्चनं बान्धवतर्पणञ्च ।
शास्त्रेषु निष्ठा दिविजेषु भक्तिः
सौजन्यमभ्यस्तगुणाश्च तस्या ॥३७७॥

कुछ गुण उसमें स्वभाव से ही थे, और कुछ गुण उसने अभ्यास से प्राप्त कर लिए थे, जैसे प्रतिव्रत, मीठी बाणी, देवताओं तथा वन्धु जनों की पूजा, शास्त्रों में श्रद्धा और देवताओं में निष्ठा आदि ॥३७७॥

दाने तत्परता मुखे मधुरता धर्मे समुत्साहिता ।
बन्धौसज्जनता गुरौ विनयिता चित्ते च गम्भीरता ॥
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानिता ।
रुपे सुन्दरता मतिर्गुरुजने सा मण्डिता सद्गुणैः ॥३७८॥★

वह तो गुणों की खान थी। दान करने को सदा तत्पर रहती थी। उसकी वाणी में मिठास भरी थी। सब धार्मिक कार्य बड़े उत्साह से करती थी। अपने बन्धुजनों से उसका व्यवहार सभ्य स्त्रियों जैसा होता था। बड़ों का आदर करती थी। गम्भीर चित्त की स्वामिनी थी। उसका आचार बड़ा पवित्र था। गुणों की रसिक थी। कई शास्त्रों का ज्ञान था। गुरुजनों की भक्त थी, और शरीरिक सुन्दरता की स्वामिनी थी ॥३७८॥

क्षारो वारिनिधिः कलङ्ककलुषश्चन्द्रो रविस्तापकृत्,

पर्जन्यश्चपलाश्रितोऽभ्रपटलादृश्यः सुवर्णाचलः।

शून्यं व्योम धरा द्विजिव्हविधृता स्वर्धामधेनुः पशुः।

काष्ठं कल्पतरुर्दृषत्सुरमणिः

साम्यं न तस्याः क्वचित् ॥३७९॥*

उसकी तुलना संसार में किस वस्तु से की जाए? समुद्र से तुलना करें, तो समुद्र खारे होते हैं। चन्द्रमा से करें तो उसमें दाग होता है। सूर्य में अग्नि होती है। बादलो में बिजली होती है। सुमेरु पर्वत पर बादल ही बादल छाए रहते हैं। आकाश शून्यमात्र है। पृथ्वी शेषनाग सांप पर खड़ी है। कामधेनु पशुमात्र है। कल्पवृक्ष भी केवल लकड़ी होता है और देवताओं का कौस्तुभ मणि पत्थर है। फिर उस सती स्त्री की तुलना इन सब से कैसे की जा सकती है? ॥३७९॥

दोर्भ्यां तितीर्षति तरङ्गवतीभुजङ्ग

मादातुमिच्छति करे हरिणाङ्कबिम्बम्।

मेरुं लिलंघयिषति ध्रुवमेव तस्याः

यः सद्गुणाङ्गदितुमुद्यममादधाति ॥३८०॥*

यदि कोई उसके सब गुणों को वर्णन करने लगे तो यह काम उतना ही असम्भव लगेगा जितना कि उस पुरुष का प्रयास जो केवल अपनी दो भुजाओं द्वारा समुद्र को पार करना चाहता हो, या जो चन्द्रमा को अपने हाथों से पकड़ना चाहता हो, या जो सुमेरुपर्वत के उस पार जाना चाहता हो ॥३८०॥

अशक्तः स फणीन्द्रोऽपि तस्याः सद्गुणवर्णने ।
सहस्रबाहुरप्यस्ति न गुणोल्लेखने प्रभुः ॥२८१॥

उसके सद्गुण वर्णन करने के लिए तो हजारों मुखवाला शेष नाग भी समर्थ नहीं हो सकता और हजारों भुजा=हाथों वाला सहस्रबाहु भी उसके गुण नहीं लिख सकता ॥३८१॥

श्रुत्वेदं वीरदेव्यास्ते वर्णनं मुनिपुंगवाः ।
श्री नारदं मुनिं प्रोचुः परितुष्टा वयं मुने ॥३८२॥

जब मुनियों ने वीरदेवी के गुणों को इस प्रकार नारदमुनि जी के मुख से सुना, तो वे सब श्री नारद जी को कहने लगे कि भगवन् आपकी कही हुई बातें सुन कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है ॥३८२॥

पुण्यश्लोका सुकल्याणी वीरदेवी कुलाङ्गना ।
कस्य भाग्यवतः पुत्री पौत्री कस्य वद प्रभो ॥३८३॥

आप हमें यह बताने की कृपा करें कि वह पवित्र तथा कल्याणी स्त्री, वीरदेवी, किस भाग्यवान की पुत्री थी और उसका पितामह कौन था ॥३८३॥

एवं पृष्टः स देवर्षिर्नारदो मुनिनायकः ।
अवदच्चातिहर्षेण मुनीन्सर्वान्यतींस्तदा ॥३८४॥

जब ऋषियों ने मुनिश्रेष्ठ नारद जी से यह प्रश्न किया तो नारदमुनि जी ने भी प्रसन्न होकर कहा । ३८४।।

शालिवाहननामाऽभून्नृपेन्द्रः शकवंशजः ।
शालिकोटमिति ज्ञातं कोटमेकं स निर्ममे ।।३८५।।

शकवंश में एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं, जिनका नाम था शालिवाहन । उन्होंने शालिकोट नाम का एक किला बनवाया था ।।३८५।।

तच्छालिकोटं कालेन नाना सौधसमाकुलम् ।
नगरं पप्रथे ख्यातिं स्यालकोटाभिधां नवाम् ।।३८६।।

कुछ समय गुजरने पर किले के आसपास बड़ी-बड़ी इमारतें बनती गईं और वहां एक शहर बस गया । शालिकोट किले का नाम भी कुछ समय बाद स्यालकोट पड गया ।।३८६।।

उपाध्यायाख्यया ख्याताः केचिद्विद्याविभूषिताः ।
अवसन्नगरे तत्र विप्रा वेदविचक्षणाः ।।३८७।।

उस शहर में कुछ विद्वान् ब्राह्मण रहा करते थे, जो उपाध्याय कहलाते थे । वेद विद्या में वह बड़े प्रवीण थे ।।३८७।।

तेष्वेको विप्रमूर्धन्यो निबाहूरामनामकः ।
धनिनामग्रगण्योऽभूद् विख्यातः पण्डितेष्वपि ।।३८८।।

उन ब्राह्मणों में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण का नाम था निबाहूराम । वह बड़ा धनी था और साथ ही बहुत बड़ा विद्वान् भी था ।।३८८।।

लक्ष्मीशः श्रुतवांश्चासौ गुणवानपि भूरिशः ।
लक्षाधिकपतिस्त्वेवं स्यालकोटे स विश्रुतः ।।३८९।।

कहते हैं कि सके पास इतना धन था कि वह लखपति के नाम से स्यालकोट शहर में प्रसिद्ध था । गुणों को तो वह खान था ॥३८९॥

विदुषस्तस्य पुत्रौ द्वौ रामकृष्णनिभौ वरौ ।
ज्येष्ठो ठाकुरदासश्च लाभामल्लोऽपरस्तथा ॥३९०॥

श्री कृष्ण और बलराम के समान उसके दो पुत्र हुए । वड़े पुत्र का नाम था ठाकुरदास और छोटे बेटे का नाम था लाभामल्ल ॥३९०॥

यशसेन्दुर्जितो येन तेजसा च दिवाकरः ।
वपुषा जितकन्दर्पो लाभामल्लो रराज सः ॥३९१॥

छोटा लड़का लाभामल्ल इतना सुन्दर था कि लोग कहते थे कि सुन्दरता में यह कामदेवता से भी वढ़ गया है । वह चन्द्रमा जैसा यशस्वी था और सूर्य समान तेजस्वी ॥३९१॥

लाभामल्लस्य सत्पुत्री वीरदेवी वरानना ।
चन्द्रज्योत्स्नेव दुग्धाब्धिगर्भात्सा समजायत ॥३९२॥

उसी लाभामल्ल को सुन्दरमुखी पुत्री वीरदेवी थी, जैसे क्षीर समुन्द्र के गर्भ से चन्द्रमा की ज्योत्सना बाहर निकल आई हो ॥३९२॥

रूपोत्कर्षे पिता तस्याः कन्दर्पदर्पमर्दनः ।
रूपराशिश्च तन्माता रतिमानविनाशिनी ॥३९३॥

उसके पिता ने अपनी सुन्दरता के कारण कामदेव को भी मात कर रखा था, साथ ही उसकी माता ने भी अपने सौन्दर्य से कामदेव की पत्नी रति को भी हरा दिया था ॥३९३॥

कमनीयः पिता तस्या जननी चापि सुन्दरी ।
पुत्री तयोस्तु सञ्जाता सौन्दर्यलतिकेव सा ॥३९४॥

सुन्दर माता और सुन्दर पिता के घर में सुन्दरता की मूर्ति कन्या का जन्म हुआ ॥३९४॥

ललाटफलकं दीप्तं पद्मपत्रे इवेक्षणे ।
करौ सुकोमलौ पुष्टौ बाहुयुग्मं मनोरमम् ॥३९५॥

उस छोटी सी बच्ची का चौड़ा माथा चम चम चमकता था। उसके मोटे-मोटे नयन कमल पत्रों जैसे चौड़े थे । उसके गुद-गुदे एवं कोमल हाथ और वैसी ही उसकी बहें मन को मोह लेती थीं ॥३९५॥

सौन्दर्यं त्वद्भुतं तस्याः स्मेरलावण्यभासुरम् ।
रतिगर्वहरा भ्रूश्च नेत्रानन्दप्रदायिनी ॥३९६॥

उसका सौन्दर्य विलक्षण एवं अलौकिक था। उसकी भवें इतनी सुन्दर थीं कि रति की भवों के मान को नीचा करती थीं । उन्हें देख नेत्रों को अपार आनन्द मिलता था ॥३९६॥

स्मेरोज्ज्वलं मुखं तस्याः तेजःपरिधिमण्डलम् ।
राकाविभावरीकान्तसंक्रान्तद्युतिमञ्जुलम् ॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यनिःश्वासपरिपूरितम् ।
नलिनीदलसंशोभि प्रातनोद् मानसे मुदम् ॥३९७॥

उसके चेहरे से अपूर्व तेज निकल कर चारों दिशाओं में फैल जाता था। मुख पर मुस्कराहट की रेखा हर समय खेलती रहती थी। चेहरा क्या था कि पूर्णिमा के पूरे चान्द को भी मात करता था। उसके श्वासों में अनेक फूलों की महक भरी थी । उसका

सुन्दर कोमल चेहरा कमल फूलों से भी अधिक सुन्दर एवं कोमल था ।।३९७।।

मातुरङ्केस्थिता पङ्केरुहाक्षी साऽकरोदधः ।
पार्वत्यङ्कस्थितक्रीडद्गणाधिपमुखश्रियम् ।। ३९८।।

जब कमल मुखी बेटी अपनी माता की गोद में बैठी होती थी तो उस समय उसकी सुन्दरता ठीक वैसी होती थी, जैसी पार्वती देवी की गोद में खेल रहे छोटे से गोरे गोरे गणपति की होती थी ।।३९८।।

पुत्री सानन्ददा पित्रोः मधुरालापवादिनी ।
सौख्यसौभाग्यसौन्दर्यगुणरत्नमहाखनिः ।।३९९।।

वह भाग्यवती पुत्री जब अपनी मीठी वाणी में मां-पो (पिता) जैसा कोई शब्द निकालती थी तो माता पिता का मन आनन्द से नाच उठता था, क्योंकि वह दोनों उस सुन्दर बेटी का अपने लिये सुख और सौभाग्य लानेवाली समझते थे ।।३९९।।

क्वचित्प्रफुल्लपद्मास्या क्वाचिच्चाश्रुविलोचना ।
अहर्षयत्तरां बाला पितरौ बालचापलैः ४००।।

कभी कभी वह बच्ची अपनी आंखों में आंसू भर लेती थी और उसके तुरन्त बाद उसका चेहरा प्रसन्नता से फूलों की भान्ति खिल उठता था। इस प्रकार बचपन की शरारतों से वह अपने माता पिता को प्रसन्न कर देती थी ।।४००।।

उरोरुहादुद्गमितैः पयोभि
रापूर्यकेल्यांनिजमास्यगर्भम् ।
फूत्कृत्य मातुर्वदने हसन्तीं
संवीक्ष्यपुत्रीं मुदमेतिमाता ।।४०१।।

जब वह बच्ची अपनी माता के आन्चल से पिया हुआ दूध, अपने मुंह से भर कर, शरारत से फूंक द्वारा, माता के ही मुंह पर फैंक देती थी, तब जो प्रसन्नता उसकी माता अनुभव करती थी उसका वर्णन कौन करे ।।४०१।।

सौम्यसौन्दर्यसम्भारसुभगैः प्राकृतैर्गुणैः ।
पितरंरञ्जयामास पार्वतीव हिमाचलम् ।।४०२।।

अपनी पुत्री के सौन्दर्य आदि अनगिनत गुणों को देख कर उसका पिता बड़ा ही आनन्दित होता था जितना अपनी पुत्री पार्वती को देखकर उस का पिता हिमाचल होता था ।।४०२।।

सुभ्रुवः दन्तपंक्तिश्च कान्तिमाकिरदद्भुताम् ।
रत्नावलीव लावण्यरत्नाकरसमुद्गता ।।४०३।।

उसके दांतों की कांति को देखकर ऐसे प्रतीत होता था जैसे सौन्दर्य के समुद्र से प्राप्त रत्नों की माला चमक रही हो ।।४०३।।

न्यग्रोधसम्भूतपुटस्थबालविष्णुद्युतिं
स्मानुकरोतिबाला ।
करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे
विनिवेशयन्ती ।।४०४।।★

उस कन्या के छोटे - छोटे हाथ, पैर और मुंह कमल के पत्तों की भान्ति कोमल थे । जब वह अपने हाथ से अपने ही पांव को पकड़ कर मुंह के अन्दर डालना चाहती थी तो बड़ी भली लगती थी, जैसे वट वृक्ष के पत्ते पर लेटे बालक विष्णु भगबान की मनमोहिनी शोभा हो ।।४०४।।

न निशाकरवज्जातु कलावैकल्यमागतम् ।
अखण्डमण्डलं चन्द्रमुख्या वदनमण्डलम् ।।४०५।।

उस चन्द्रमुखी कन्या के चेहरे की शोभा चांद की शोभा की तरह घटती बढ़ती नहीं रहती थी, बल्कि सदा अखण्ड, एकरस रहती थी ॥३०५।

लावण्यमतनोद् दिक्षु मुखं तस्या अलौकिकम् ।
स्मितज्योत्स्नासुधाधाराधवलीकृतभूतलम् ॥४०६॥

उसके मुख की अलौकिक सुन्दरता चारों दिशाओं में फैल जाती थी। उसके हंसते चेहरे से निकली हुई अमृत की श्वेत धारा तीनों लोकों को श्वेत बना देती थी ॥४०६॥

महाभिजनसञ्जातराजपुत्रीव शैशवे ।
अदिशच्चानुभावेन भव्येनागामिजृम्भितम् ॥४०७॥

उत्तम कुल में उत्पन्न वह कन्या बचपन में अपने शुभ लक्षणों से ऐसे लगती थो जैसे कोई राजपुत्री हो ॥४०७॥

चपलैः शैशवाच्छुद्धाऽनुभावात्सा ससौष्ठवैः ।
लडितैर्बालिका क्रूरचित्तान्यप्यार्द्रयद् द्रुतम् ॥४०८॥

बालसुलभ. पवित्र तथा शुद्ध लक्षणों से और चपल शरारतों से वह कन्या निर्दयी लोगों के चित्त को भी वश में कर लेती थी ॥४०८॥

तदालापा महासौख्यगर्भा बाल्यास्फुटा अपि ।
अमृतार्द्रा इवोद्गाराः परपुष्टगलोद्गताः ॥४०९॥

उस बालिका की तोतली बोली सुनकर मन इतना प्रसन्न होता था जैसे कोयल के गले से निकली हुई अमृतभरी ध्वनि हो !॥४०९॥

बालिशाश्चोक्तयस्तस्या अस्पष्टा अपरिस्फुटाः ।
सर्वस्यानन्दसन्दोहनिस्यन्दजनका ध्रुवम् ॥४१०॥

उस बालिका की अस्पष्ट तोतली वाणी किसी को समझ में तो नहीं आती थी, फिर भी सबके मन में आनन्द की धारा बहा देती थी ॥४१०॥

जनः संवीक्ष्य मृद्वङ्गीं बालिकां प्रियदर्शनाम् ।

गृहीत्वाङ्के सरोजाक्षीं स्वं सुधन्यममन्यत ॥४११॥

जो कोई उस कोमलाङ्गी बालिका को देखता था, तो उसका मन करता था कि उसको उठा कर अपनी गोदी में बिठाए और धन्य हो जाए ॥४११॥

स्मितपुष्पोज्ज्वलं लोलनेत्रभृङ्गं च तन्मुखम् ।

न कस्य नन्दनं चारुसुरभिश्वसितानिलम् ॥४१२॥

उसके मुख पर खेलती हुई मुस्कराहट कुन्द-केतकी आदि फूलों की सुफेदी से भी अधिक उज्ज्वल थी । उसके सुन्दर चेहरे पर कजरारे नेत्र काले भंवरों जैसे चंचल थे ; उसके मुख से श्वास निकलते थे तो सारा वातावरण सुगन्ध से महक उठता था । ऐसा मुखड़ा देख कर कौन प्रसन्न हुए विना रह सकता था ! ॥४१२॥

स्मितं तस्थाः सुबिम्बौष्ठया दन्तद्युतिसमुज्ज्वलम् ।

पुष्पमिव प्रवालस्थं मौक्तिकं विद्रुमस्थितम् ॥४१३॥

गहरा लाल रंग उसके पतले पतले होठों में कूट कूट कर भरा था । वह जब कभी जरा सा मुस्करा देती थी तो उसके लालसुर्ख होठों पर उसके श्वेत दान्तों की चमक पड़ती थी । तब ऐसे लगता था कि लाल रंग वाले रत्न (प्रवाल) पर किसी ने सुफेद फूल रख दिये हैं, या लाल रंग के हीरे (विद्रुम) पर किसी ने सफेद मोती विखेर दिये हैं ॥४१३॥

एकस्याङ्कात् परस्याङ्के स्कन्धात्स्कन्धे गताऽपि वा ।
अंगुल्या नीयमानाऽभूत्सर्वमानसमोहिनी ॥४१४॥

कभी उसको अपने कन्धे पर उठा कर एक आदमी ले जाता था तो कभी दूसरा कोई उसकी उंगलियों को पकड़ कर चलाता था, इस तरह वह सब के मन को मोह लेती थी ॥४१४॥

कथंकारं करोत्यश्वो हेषारावं गुरुस्वरम् ।
कथंकारं तथा क्रुद्धो मर्कटःकिट्किटायते ॥४१५॥

कभी वह कन्या कई प्रकार के पशु पक्षियों की बोली की नकल करके दिखाती थी जब उसको पूछते थे कि घोड़ा किस तरह हिन्-हिन् करके बोलता है, बन्दर किस प्रकार किट् किट् करता है ॥४१५॥

कथं करोति मार्जारी म्याऊंम्याऊमिति ध्वनिम् ।
पृष्टा साऽन्वकरोदेवं पशुपक्षिध्वनींस्तदा ॥४१६॥

बिल्ली किस प्रकार म्याऊं-म्याऊं की आवाज निकालती है, तब इन सब बोलियों की नकल करती हुई वह बड़ी प्यारी लगती थी ॥४१६॥

क्षुद्रकायैश्च मृत्पात्रैश्चमसभ्राष्ट्रदर्विभिः ।
नानाक्रीडनकैः क्रीडाकौतुकं विदधेऽद्भुतम् ॥४१७॥

कभी वह कन्या मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौने बना कर उनसे खेलती थी । जैसे बर्तन, चमचे, कड़ाहियां, पतीले आदि ॥४१७॥

प्राप्नुवन्कोमलत्वं वै गोलाकृतिदृषत्कणाः ।
मृद्वंगुलिसंस्पर्शात् तन्वंग्याः खेलनक्रमे ॥४१८॥

जब वह पत्थरों के छोटे-छोटे गोल कंकरों से (गीटे) खेलती थी तो उसकी कोमल उगलियों के स्पर्श से पत्थर भी कोमल हो जाते थ ।।४१८।।

कर्पूरस्यशलाकेव प्रत्यहं निज सौरभैः ।
बाललीलायतैस्तैस्तैः स्वमुदन्तमजिज्ञपत् ।।४१९।।

इस प्रकार अपनी बाललीलाओं से वह अपने उज्ज्वल भविष्य की सूचना देती थी जैसे अपनी सुगन्ध से कर्पूर की सलाई देती है ।।४१९।।

स्वहस्तनिर्मितैर्भव्यैर्जन्तूनां पक्षिणां तथा ।
हास्योत्पादकचित्रैःसा सर्वस्यानन्ददाऽभवत् ।।४२०।।

उसके हाथ से बने हुए नाना प्रकार के पक्षी तथा जन्तुओं के हास्यजनक चित्रों को देखकर सबको बड़ा आनन्द मिलता था ।।४२०।।

दत्तचित्ताऽशृणोद्बाला चटकाकाकयोः कथाम् ।
शशसिंहश्रृगालानां गाथाश्चैव मनोरमाः ।।४२१।।

वह कन्या बड़ी दत्तचित होकर चिड़िया और कौए की कहानी सुना करती थी । शेर, गीदड़, और दूसरे जन्तुओं की मनारंजक कथाएं सुनकर बड़ी प्रसन्न होती थी ।।४२१।।

गन्धर्वाप्सरसां चित्रा भूतप्रेतादिरक्षसाम् ।
अश्वानां जवदृप्तानां विहायोमार्गगामिनाम् ।।
अंगुष्ठमात्रदेहानां पातालतलवासिनाम् ।
नाक्लामयत्कथा रम्याः श्रावं श्रावमनेकधा ।।४२२।।

गन्धर्व तथा अप्सराओं की, प्रेतों की, राक्षसों की, परियों की कथाएं तथा आकाश मार्ग में उड़ जाने वाले घोड़ों की कथाएं एवं पाताल देश के वासी बौने लोगों की कथाएं, जिनका शरीर अंगठे से भी छोटा होता है, ऐसी ही अन्य कथाएं सुन-सुन कर उसका मन नहीं भरता था ॥४२२॥

पञ्चतन्त्रकथाश्चापि मृगाखुपशुपक्षिणाम् ।
बलीवर्दगजादीनां सरसाश्चित्तमोहकाः ॥४२३॥

पञ्चतंत्र की कथाएं, पशु पक्षी तथा अन्य जन्तुओं की कहानियां, शेर, खरगोश गीदड़ आदि की रसपूर्ण कथाएं उसके मन को मोह लेती थी ॥४२३॥

महाभारतगाथां च पाण्डवानां पराक्रमम् ।
दुर्योधनस्य चौद्धत्यंकृष्णस्य नीतिवादिताम् ॥४२४॥

वह महाभारत की अनेकों कथाएं सुनती थी, जिनमें पांडवों के पराक्रम का वर्णन होता था अथवा दुर्योधन की उद्दंडता एवं श्री कृष्ण की नीतिवादिता का बर्णन होता था ॥४२४॥

वाल्मीकिवर्णितां गाथां ग्रंथे रामायणे वराम् ।
सीतायाः पतिभक्तिं च सेवां श्री लक्ष्मणस्य च ॥
भरतस्योपासनां प्रेमभक्तिं हनुमतोऽपि च ।
समाहिताऽश्रृणोद्बाला सानुरोधं मुहुर्मुहुः ॥४२५॥

रामायण में लिखी हुई वाल्मीकि ऋषि द्वारा वर्णित गाथाएं भी वह प्रेम से सुनती थी, जिन में सीता की पतिभक्ति, लक्ष्मण की सेवा, भरत की उपासना और प्रेम का बर्णन होता था। हनुमान की भक्ति की कथाएं वह बड़े ध्यान से तथा बार-बार अनुरोध करके सुनती थी ॥४२५।

उदन्तांश्च तथैवान्यान् नानापुस्तकवर्णितान् ।
कौतूहलरसाविष्टान् विविधानतिरोचकान् ॥४२६॥

दूसरी पुस्तकों से भी वह बहुत सी अन्य कथाएं सुना करती थी, जो मनोहर रसपूर्ण तथा रोचक हों ॥४२६॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां देवतानां कथा अपि ।
पुराणगदिता गाथा अश्रृणोत्सा पुनः पुनः ॥७२७॥

फिर वह पुराणों में वर्णित देवताओं ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की कथाओं को भी बार-बार सुना करती थी ॥४२७॥

राजस्थाननृपाणां च वीर्यविक्रमशालिनाम् ।
कथाश्च राजपुत्राणां सानुरागं न्यशामयत् ॥४२८॥

साथ ही राजस्थान के महाराजाओं की कथाएं सुनती थी और उन राजपुत्रों की कथाएं बड़े प्रेम से सुनती थी, जिनकी बहादुरी की तुलना नहीं मिलती ॥४२८॥

राणाप्रतापसिंहस्य श्रीशिवाजीमहात्मनः ।
पराक्रमकथाः श्रुत्वाऽभवत्पुलकिता भृशम् ॥४२६॥

महाराणा प्रतापसिंह तथा छत्रपति शिवाजी की अद्भुत पराक्रम की कथाएं सुन कर उसके रोम खड़े हो जाते थे ॥४२९॥

मातृभूमिसुरक्षार्थं देहत्यागकृतां कथाः ।
श्रुत्वा चाश्रुमुखी बाला मन्त्रमुग्धा ह्यजायत ॥४३०॥

जब वह अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए बलिबेदी पर चढ़ जाने वाले युवक भक्तसिंह आदि शूरवीरों की कथाएं सुनती थी, तो उसकी आंखों में आंसू भर आते थे और मंत्रमुग्ध हो जाती थी ॥४३०॥

विनोदव्यंग्यहास्याढ्यां परिहासकथावलीम् ।
भूयो भूयोऽपि सा श्रुत्वा लेभे तृप्तिं कदापि नो ।।४३१।।

कभी-कभी वह विनोद-व्यंग्य और हास्य-उत्पादक चुटकले भी सुनती थी, और वह चुटकले लोगों को सुना-सुना कर उसका मन नहीं भरता था ।।४३१।।

वीक्ष्य तां लक्षणोपेतां पितुरङ्के सुलोचनाम् ।
अमोघप्रत्ययो व्यक्तं व्याजहारेति दैववित् ।।४३२।।

उस को एक बार अपने पिता की गोद में बैठे हुए देख कर एक ज्योतिषी ने कहा था, कि इस कन्या के उत्तम लक्षण देख कर मैं निश्चय से कह सकता हूं ।।४३२।।

पुण्योपचयसुन्दर्या भूरिसौभाग्यभासुरः ।
भवितास्याः पतिर्नूनं जगतीभोगभाजनम् ।।४३३।।

कि इस कन्या के पूर्वसञ्चित सत्कर्मों के कारण इसका पति संसार के सब उत्तम भोगों को भोगने बाला कोई बड़ा भाग्यशाली पुरुष होगा ।।४३३।।

स्वल्पज्ञोऽपि भवेत्तूर्णं पूर्णपाण्डित्यमण्डितः ।
रङ्कोऽपि स धनी भूयात्सर्वैश्वर्यवतां वरः ।।४३४।।

यदि वह मूर्ख भी होगा, तो विद्वान् बन जाएगा । यदि निर्धन होगा, तो धनवान हो जाएगा । यदि पहले ही धनवान होगा तो अवश्य कोई राजा बनेगा ।।४३४।।

ज्योतिर्विदश्च वाण्येषा गणितज्ञवरस्य वै ।
आवितथ्यतया युक्ता गता काले यथार्थताम् ।।४३५।।

उस ज्योतिषी की भविष्य वाणी बिल्कुल सच निकली क्योंकि वह ज्योतिष गणित के अनुसार ठीक थी ।।४३५।।

षड्वर्षदेश्या बाला सा स्वमातुलगृहं गता ।
कुञ्जाहनगरे रम्ये पाकिस्तानस्थितेऽधुना ॥४३६॥

जब उस बालिका की आयु छः वर्ष की हो गई तो वह अपने मामा के घर कुञ्जाह नगर में चली गयी, जो आजकल पाकिस्तान की सीमा के अन्दर है ॥४३६॥

एकस्मिन्मस्जिदे तत्र पूजास्थाने तु यावने ।
उर्दू वाक्-फारसीज्ञानं प्राप्तं किञ्चित्तया तदा ॥४३७॥

वहां एक मस्जिद में (जो मुसलमानों का पूजा स्थान होता है) उसने थोड़ा सा उर्दू और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया ॥४३७॥

गुलिस्तांबोसतांकाव्यवाचनाभ्याससंरता ।
शैशवं यापयामास सुसुखं मातुले गृहे ॥४३८॥

वहां उसने फारसी भाषा के गुलिस्तां बोस्तां नामक काव्यों को पढ़ना प्रारम्भ किया। इस प्रकार अपने नाना के घर उसका बचपन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ ॥४३८॥

स्यालकोटपुरं पश्चात् समागत्य पुनस्तया ।
राज्यविद्यालये शिक्षाग्रहणं विधिना कृतम् ॥४३९॥

इसके बाद वह वापिस स्यालकोट आ गई और वहां के गवर्मेंट हाई स्कूल में विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त करने लगी ॥४३९॥

विज्ञानशास्त्रगणितप्रवीणाया: प्रशस्यते ।
बहुलासु च भाषासु तस्या नैपुण्यमद्भुतम् ॥४४०॥

वहां उसने कई भाषाओं में निपुणता प्राप्त कर ली । गणित आदि विषयों में भी सब उसके ज्ञान की प्रशंसा करते थे ।।४४०।।

पञ्जाबीवागभूत्तस्याः मातृभाषा स्वभावजा ।
धीमत्या डोगरीभाषाप्यभ्यस्ता लीलया पुनः ।।४४१।।

उस की मातृभाषा तो पंजाबी थी. पर उसके साथ ही साथ उसने डोगरी भाषा का भी अभ्यास कर लिया ।।१४१।।

आंग्लभाषां तथा हिन्दीं चाधीत्यापि प्रयत्नतः ।
उर्दूवाक्फारसीज्ञानं प्राप्तं भूयो भृशं तया ।।४४२।।

हिन्दी और अंग्रेजी भाषा भी बड़े यत्न से पढ़ी और साथ ही साथ उर्दू और फारसी भी सीख ली ।।४४२।।

संस्कृताध्ययने चापि कुशला तीक्ष्णधीरसौ ।
तत्तत्प्रकरणश्लोकान् विविधानवदत्सुधीः ।।४४३।।

वह संस्कृत पढ़ने में भी तीक्ष्ण थी और वार्त्तालाप करते समय प्रकरणवश प्रायः संस्कृत के श्लोक भी बोल लेती थी ।।४४३।।

सानन्दमवदच्चैमपन्हुतीः प्रहेलिकाः ।
विविधानि च कूटानि सुप्रीता साऽभवद् भृशम् ।।४४४।।

कभी-कभी वह अपन्हुति अथवा पहेलियां तथा कूट श्लोक सुनाकर बड़ी प्रसन्नता अनुभव करती थी ।।४४४।।

कोविदाऽनेकभाषायां नैकविद्याविचक्षणा ।
सूचिकार्यप्रवीणाऽपि सञ्जाता ह्यचिरेण सा ।।४४५।।

इस तरह अनेक भाषाओं को सीख कर और कई विद्याओं

में प्रवीण होकर उसने ऊनी वस्त्रों की बुनाई और सूई से कढ़ाई करने का काम भी सीख लिया ॥४४५॥

तन्तुचित्रविनिर्माणे पण्डिता सूचिकर्मभिः ।
कौशेयौर्णादिवस्त्रेषु नाना चित्राकृतीर्व्यधात् ॥४४६॥

सूई से ऊनी रेशमी तथा सूती कपड़ों पर अनेक प्रकार के बेल बूटों की कशीदाकारी करके वह अपनी निपुणता का प्रमाण प्रस्तुत करती थी ॥४४६॥

सूचिकार्यसमुद्भूतनानाचित्रलताकृतीः ।
दृष्ट्वा चित्रकरास्तस्या जाताश्चित्रार्पिता इव ॥४४७॥

सूई की सिलाई के काम में वह जिन फूलों बेलों के चित्र बनाती थी, उनको देखकर सिद्धहस्त चित्रकार भी हैरान हो जाते थे ॥४४७॥

ऊर्णमयानि वस्त्राणि स्वैट्रादीनि भवन्ति ये ।
अभ्यस्य वयनं तेषां सम्प्राप्ता प्राज्ञता तया ॥४४८॥

गर्म ऊनी वस्त्र (स्वेटर आदि) बुनने का भी बड़ा रिवाज है। उसने ऊनी वस्त्रों की बुनाई का काम भी खूब अभ्यास कर के भली प्रकार सीख लिया ॥४४८॥

अनेकतन्तुसन्तानवर्णविच्छित्तिसुन्दरः ।
मृदुस्वैटरसच्छन्नः सुवेषः सुतनोर्व्यभात् ॥४४९॥

जब वह अनेक रंगों के तथा अनेकों भान्ति की बुनाई के मुलायम ऊन के स्वेटर पहनती थी तो उसका देह बड़ा सुन्दर लगता था ॥४४९॥

बहुलासु च विद्यासु व्युत्पन्ना बलिकाऽपिसा ।

चित्रकार्यंप्रवीणाऽभूत्सूचिकार्यविचक्षणा ॥४५०॥

इस तरह उसने बालिका होकर भी कई प्रकारकी विद्याएं तथा कलाएं सीखीं । सिलाई के कार्य में तो बहुत ही होशियार थी, पर फूल तथा बेलें बनाने में भी बड़ी दक्ष थी ॥४५०॥

न सा विद्या न तच्छिल्पं न तत्कर्म न सा कला ।

अभ्यस्य यदसौ बाला नाभूत्पाण्डित्यमण्डिता ॥४५१॥

ऐसी कोई विद्या नहीं थी, न कोई शिल्प था, न कोई कला थी, जिसका अभ्यास कर के वह प्रवीण न बन गई हो ।.४५१॥

अन्त्याक्षरीपरीक्षायां प्राप्तसर्वोत्तमस्तरा ।

प्रहेलिकोक्तिनैपुण्येऽप्रतिमाऽनेकधा व्यभात् ॥४५२॥

अपने विद्यालय में पहेलियां बूझने में और अन्त्याक्षरी की परीक्षाओं में सब से बढ़कर भाग लेती थी और प्रथम स्थान प्राप्त करती थी ॥४५२॥

हारमोनियमं वाद्यं तबलावादनं तथा ।

समभ्यस्य कियत्कालमपास्तं च पुनस्तया ॥४५३॥

अपने घर पर उसने हारमोनियम तथा तबला बजाने की शिक्षा भी प्राप्त की थी, परन्तु थोड़ी देर के बार इसका अभ्मास छोड़ दिया ॥४५३॥

गायने वादने दक्षा कोकिलस्वरमञ्जुला ।

विद्यालये न सन्दृष्टा छात्रा तत्सदृशी ध्रुवम् ॥४५४॥

गाने में तथा बाजा आदि बजाने में वह बड़ी दक्ष थी। उसका स्वर कोयलों जैसा मीठा था। उसके विद्यालय में कोई भी छात्रा गाने में उसका मुकाबला नहीं कर सकती थी ।।४५४।।

किकलीकूर्दनं चान्या: खेलास्तस्या अनेकधा ।
तत्प्रभुत्वं सखीवर्गे सर्वत: समदर्शयन् ।।४५५।।

वह अन्य प्रकार की अनेक खेलें खेलती थी, जैसे किकली, कूदना, रस्सी पर कूदना इत्यादि । उन सब खेलों में वह अपनी सखियों से बढ़ कर भाग लिया करती थी ।।४५५।।

चलद्भुजलताशोभि क्रीडाकन्दुकखेलनम् ।
चञ्चद्भ्रूवल्लरीरम्यमाहरत्प्रसभंमन: ।।४५६।।

वह गेंद से खेलती थी तो वृक्ष की लता के समान उसकी कोमल भुजाएं जब ऊपर नीचे आती जाती थीं और जब उसकी भवें भी उसी गेंद को गति के साथ ऊपर नीचे उठती-बैठती थीं, तो देखने वाले के मन की विचित्र दशा हो जाती थी ।।४५६।।

शीकरासारवेलायां सखीभि: परिवेष्टिताम् ।
दोलायां स्थितां बालां वीक्ष्य दोलायते मन: ।।४५७।।

जब सावन में नन्ही-नन्ही बून्दे बरस रही होती थीं, और वह अपनी सखियों से घिरी हुई, झूलने में बैठ कर झूलती थी तो देखने वालों का दिल भी हिलोरें खाता था ।।४५७।।

गिद्धानृत्यं हि पञ्जाबप्रदेशयुवतीप्रियम् ।
तस्मिन्प्राप्य प्रवीणत्वं विश्रुता नृत्यकोविदा ।।४५८।।

पंजाब प्रदेश में गिद्धा और भांगड़ा नाम के दो नृत्य बहुत प्रसिद्ध हैं, जो युवतियों को बहुत प्रिय होते हैं। उसने इन दोनों नृत्यों में दक्षता प्राप्त कर ली थी ।।४५८।।

गिद्धानृत्यमकार्षीत्सा तालैश्च कूर्दनैः पुनः ।
हस्तयोर्मेलनैस्तालोदानैर्वक्त्रविभङ्गिभिः ॥४५८॥

वह गिद्धा नृत्य में भी प्रवीण थी जिसमें तालियां वजा-वजा कर, सिर को कभी इधर कभी उधर घुमा कर, कभी हाथ से हाथ मिला कर, ढोल के पूरे ताल पर नाचना पड़ता है ॥४५८॥

तद्वाचिकाङ्गिकाहार्यसात्विकाभिनयोज्ज्वलम् ।
नृत्यं दृष्ट्वा जनः सर्वः प्राशंसच्चचतुर्मुखम् ॥४५९॥

जो कोई उसके वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनययुक्त नृत्य को देखता था, वाह-वाह कर उठता था ॥४५९॥

लोकगीतान्यधीतानि रसस्फीतानि बालया ।
तालस्वरप्रयुक्तानि सर्वाण्यभ्यस्य यत्नतः ॥४६०॥

ताल और स्वर युक्त मनोहर शास्त्रीय संगीत अच्छी तरह सीख कर उसने रस भरे लोकगीतों का भी अभ्यास कर लिया ॥४६०॥

गीतिशास्त्ररहस्यज्ञा लयतालविचक्षणा ।
लोकगीतान्यगायत्सा नितरां मधुरस्वरा ॥४६१॥

उपयुक्त ताल तथा लय युक्त मनमोहक शास्त्रीय संगीत भली प्रकार सीख कर वह संगीतशास्त्र में प्रवीण हो गयी । पर जव वह रसीले पंजावी तथा डोगरी लोकगीत अत्यंत मीठे स्वरों में गाती थी तो समां बंध जाता था ॥४६१॥

तस्या नृत्ये च गीते च त्वत्तोमेऽधिकं सुखम् ।
इति वादोऽभवच्छोत्रनेत्रयोः प्रेक्षणक्षणे ॥४६२॥

देखने वाले के नेत्र और कानों में इस वात पर विवाद खड़ा हो जाता था कि उसका नृत्य और गीत देख सुन कर इन दोनों अंगों में से किस अंग को अधिक सुख मिला हैं, कानों को या नेत्रों को ॥४६२॥

तदानीन्तनविज्ञानव्युत्पन्ना विदुषीवरा ।
विद्याप्राप्ति समाप्यासौ बाला तारुण्यमस्पृशत् ॥४६३॥

उन दिनों में जितनी विद्या विज्ञान आदि की दी जाया करती थी, उसको समाप्त करके उसने यौवन में पदार्पण किया ॥४३३॥

समवर्धत माधुर्यं वाण्यां गत्यां निसर्गतः ।
वयसि प्रथमे याते बालाया यौवनोदये ॥४६४॥

जव उसका बचपन व्यतीत हो गया और यौवन उदय होने लगा, तो उसकी वाणी तथा चाल में स्वभावतः ही मधुरता आने लगी ॥४६४॥

सर्वाङ्गसुन्दरी तन्वी परिस्फुटितयौवना ।
सौंदर्यंसौधसोपानमारोहत्सा दिने दिने ॥४६५॥

जब उसके शरीर में यौवन का उदय होने लगा तो वह सौन्दर्य की सीढ़ियां प्रतिदिन ऊपर ही ऊपर चढ़ती गई ॥४६५॥

आविरासीदकस्माच्चाप्यारुण्यं तत्कपोलयोः ।
नयनाञ्चलचाञ्चल्यं पादनिक्षेपविभ्रमः ॥४६६॥

उसके चेहरे पर गालों का रंग अकस्मात् पहले से अधिक लाल होने लगा । उसके नेत्रों में चंचलता आती गई और चाल भी पहले से अधिक मस्तानी होती गई ॥४६६॥

वर्धंतेस्म स्वसौंदर्यशोभासिक्तजगत्त्रयी ।

प्रतियच्चन्द्रलेखेव तारुण्याब्धिसमुद्गता ।।४६७।।

वह वालिका अपनी सुन्दरता से तीनों लोकों को प्रसन्न करती हुंई ऐसी लगतो थी जैसे यौवन के समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा की कला ।।४६७।।

यौवनोदयशोभिन्या: पद्माक्ष्या अत्यशोभत ।

गात्रयष्टिस्तु षोडश्या: पुष्टाङ्गातुष्टिदायिनी ।।४६८।।

जव वह सोलह वर्ष को हो गई ता उसके सब अंग केवल पूर्णतया पुष्ट ही नहीं हो गए प्रत्युत तर्शकों के मन को मोहने लगे । ४६८।।

अमृतं लोकने तस्या वचनेष्वमृतं तथा ।

अमृतंचाधरे तन्व्या: सर्वाङ्गं तत्सुधामयम् ।।४६९।।

उसकी आंखों से अमृत की धारा वहने लगी जो मरे हुओं को भी जिला सकती थी । उसकी वाणी में भी अमृत जैसे ही मिठास थी । उसके होंठ भी अमृत रस से भरते गये । उसके शरीर के सारे अंग अमृत रस में भिगो कर वनाए प्रतीत होने लग ।।४६९।।

तदङ्गमार्दवं वीक्ष्य प्रादुनोत् कस्य नो मन: ।

मालतीकेतकीपुष्पकदलीनां कठोरता ।।४७०।।

उसके अंगों की कोमलता का देखकर सभो के मन में यह विचार उठता था कि मालती या केतको के फुल, अथवा केले के पत्ते तो उसके अंगों की तुलना में बड़े खुरदरे होते हैं । ४७०।।

जाताम्लानमुखी द्राक्षा शर्करा चाश्मतां गता ।
वीक्ष्य बिम्बाधरं तस्या: सुधा भीता गता दिवम् ।।४७१।।

उसके अधरों की मिठास के सामने दाख का मुख काला पड़ जाता था । शक्कर अथवा मिश्री पत्थर बन जाती थी, और अमृत का रस तो डर के मारे स्वर्ग में जा छुपता था ।।४७१।।

कान्तिमादाय रंगाणां पुष्पेभ्यो विविधा विधि: ।
स्थापयामास यत्नेन शंकेऽहं तत्कपोलयो: ।।४७२।।

मेरा तो विचार है कि विधाता ने अनेक प्रकार के गुलाबी पुष्पों के रंगों को बड़े यत्न से निकाल कर उसकी गालों में भर दिया होगा ।।४७२।।

मृदुसोमलतोद्भिन्ना कोमला कलिकेव सा ।
तारुण्यतरुसंलग्नलावण्यलतिका व्यभात् ।।४७३।।

वह सौन्दर्य की बेल के समान लगती थी जो तारुण्य के वृक्ष से लिपटी हुई हो, अथवा वह स्वर्ग लोक में उग रही सोमलता की कोमल कलिका के समान थी ।।४७३।।

तारकाद्युतिधारेव शान्तिदा चित्तमोहिनी ।
सौन्दर्यशुक्तिकोद्भूतस्वच्छमौक्तिकभासुरा ।।४७४।।

या सौन्दर्य को सीप से निकला हुआ कोई स्वच्छ मोती थी या सितारों की रोशनी की निरन्तर बहुती हुई धारा थी या वीणा की तारों से निकल रही मधुरध्वनि थी ।।४७४।।

मनोहारि तदङ्गानां सौन्दर्यं तदकृत्रिमम् ।
प्रामोहयन्नृचित्तानि यदि तत्र किमद्भुतम् ।।४७५।।

उसके सब अंगों का मनमोहक स्वाभाविक सौन्दर्य प्रति दिन बढ़ता जाता था। यदि अपनी सुन्दरता से वह दूसरों का मन मोह लेने की शक्ति रखती थी तो इसमें अद्भुत बात क्या थी? ॥४७५॥

रूपमोहविमूढानां मनुष्याणां तु का कथा ।
देवा अद्भुतरूपस्य तस्या दर्शनकांक्षिण: ॥४७६॥

उसके सुन्दर रूप के दर्शन की लालसा तो देवताओं के मन में भी उत्पन्न हो जाती थी। मनुष्यों की तो बात ही कोई नहीं, क्योंकि वह सब रूप के लोभी होते हैं ॥४७६॥

दुग्धाब्धिवीचीसितदन्तपंक्ति
संवीक्ष्य शङ्के मृगशावकाक्ष्या: ।
मुखश्रियाचन्द्रमिवाभिभूय
बन्दीकृतं तारकचक्रवालम् ॥४७७॥*

उसकी आंखें एक मृगी के छोटे बच्चे के नेत्रों जैसी चंचल थीं। क्षीर समुद्र की लहरों की भान्ति सुफेद उसकी दांतों की पंक्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उसके चेहरे ने चन्द्रमा की सुन्दरता को हराकर सितारों के समूह को (जो चन्द्रमा की सेना थी) मुख में कैद कर रखा है ॥४७७॥

प्रत्यस्त्रशोभिगात्राया: प्रतिक्षणं नवा नवा: ।
विभ्रमा लोकचित्तेषु मोहवृत्तीरपोषयन् ॥४७८॥

उसके शरीर को चाहे जिस तरफ से देखो, सब तरफ से सब अंग सुन्दर दिखाई देते थे ओर प्रतिक्षण नवीनता धारण कर लेते थे। ऐसे रूप को देख किस के चित्त में मोह उत्पन्न नहीं होता? ॥४४८॥

स्वीकृता मौक्तिकैः पीडा सोढा वेधनवेदना ।
त्यक्तो रत्नाकरे वासस्तत्कण्ठाश्लेषलोभिभिः ॥४७९॥*

मोतियों ने (उसके गले का हार बनने के विचार से) रत्नाकर (समुद्र) में रहना भी त्याग दिया और अपने शरीर में वेध कराने की पीड़ा को भी स्वीकार किया । यह सब इस लिए कि उसके कण्ठ से प्रतिक्षण लगे रहें ॥४७९॥

जडो विधिर्न निर्माति सर्वाङ्गसुन्दरं जनम् ।
इति वादमपाकर्त्तुमनिन्द्यां तां स निर्ममे ॥४८०॥

विधाता इतना जड़ है कि किसी ऐसे व्यक्ति को बना नहीं सकता जो सब प्रकार से सुन्दर दिखाई दे । लोगों में यह उक्ति आम प्रचलित है । इस बदनामी से बचने के लिए बिधाता ने उसे अत्यन्त सुदरी बना दिया कि उसके शरीर में कोई भी दोष न निकाल सके ॥४८०॥

बालभावं त्यजत्यस्या वयो रम्यं यथा यथा ।
परिणेयेति चिन्तास्या मातुश्चित्तेऽत्यवर्धत ॥४८१॥

ज्यों-ज्यों उस बालिका का शरीर बचपन को त्याग कर यौवन में प्रवेश करता जाता था, उसकी माता के मन में चिन्ता बढ़ती जाती थी कि अब इसका विवाह जल्दी हो जाना चाहिए ॥४८१॥

विवाहदिवसस्तस्या निश्चितश्चाभवद् यदा ।
कृष्णपक्षे कलेवेन्दोः मातुश्चिन्ता गता क्षयम् ॥४८२॥

जब उसके विवाह का दिन निश्चित हो गया, तो उसकी माता के मन की चिन्ता इस तरह धीरे-धीरे घट गयी जिस तरह

कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है ।।४८२।।

इन्दोर्मयूखा अधिका मनोज्ञाः
सुशीतलाः शान्तिकराश्च वाताः ।
सूर्यस्य तापः सुखदोऽतिरम्यस्तस्या
विवाहस्य दिने प्रजातः ।।४८३।।

उस दिन सूर्य की किरणें भी सुखदायक लग रहीं थीं। ठण्डी ठण्डी वायु चल रही थी । रात्रि को चांद की किरणें भी बड़ी मनोहर लगती थीं क्योंकि यह उसके विवाह का दिन था ।।४८३।।

इन्द्रश्च वायुर्बरुणस्तथाग्निः
पूषा च रुद्रो धृतमर्त्यरूपाः ।
सर्वे सुरास्तत्रसमागतास्ते
तस्या विवाहस्य दिने सहर्षम् ।।४८४।।

विवाह के मौके पर सारे देवता भी प्रसन्नतापूर्वक वहां आ पहुंचे, जिनमें मुख्य देवता थे इन्द्र, वायु, वरुण तथा अग्नि । सब देवता मनुष्य का रूप धारण करके वहां आये थे ।।४८४।।

रविः शशी भूमिसुतो बुधश्च
वृहस्पतिः शुक्रयुतः शनिश्च ।
तस्या विवाहोत्सवदर्शनार्थं
समागतास्तत्र शुभे मुहूर्त्ते ।।४८५।।

उसके विवाह के उत्सव को देखने के लिए सारे ग्रह शुभ मुहूर्त में वहां पहुंच गए । उनमें सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति शुक्र, शनि आदि ग्रह सम्मिलित हुए ।।४८५।।

तद्विवाहोत्सवे तत्र वधूप्रेक्षागतैः सुरैः ।
दीपमालाच्छलान्मुक्ताः स्वच्छहेमाम्बुजस्रजः ।।४८६।।

उसके विवाह के उत्सव पर जो देवता आए थे, उन में सब ने स्वर्ग से ला कर सोने के कमलों से बनी मालाउं इधर-उधर सजा दीं । वह मालाएं लोगों को दीपमाला के रूप में दिखाई दे रही थीं । ४८६।।

जलान्तर्बिम्बिता वेद्यां दीपाली सुमनोहरा ।
दापिता वरतुष्ट्यर्थं पाशिना प्रास्फुरच्छुभा ।।४८७।।

वेदी के आस-पास रखे जल पात्रों में पड़ कर दीपमाला का सुन्दर प्रकाश ऐसे प्रतीत होता था कि वर को प्रसन्न करने केलिए पाताल लोक के देवता ने पाताल में भी दीपमाला करदी है ।।४८७।।

अभ्यसिञ्चन्वधूं तुष्टाः सुरभेः पयसा सुराः ।
जलैश्चाकाशगङ्गाया ऐरावत करौद्धतैः ।।४८८।।

देवता लोग बड़े प्रसन्न थे । वे स्वर्ग से कामधेनु के दूध को अपने साथ ले आए थे । उस दूध में वे उस पवित्र जल को मिलाते जाते थे जिसे ऐरावत हाथी (इन्द्र देवता का वाहन) अपनी सूंड में भर-भर कर आकाश गंगा की पावन धारा से लाता जाता था । उस पावन दूध और पुनीत जल के मिश्रण को देवता कन्या के शशीर पर छिड़क कर उसे और भी अधिक पवित्र करते जाते थे ।।४८८।।

गृहं वध्वाः प्रदीपाढ्यमाकाशं तारकान्वितम् ।
परं पूर्वतुलांचक्रे मुग्धयोषिद्गणार्चितम् ।।४८९।।

जमीन और आस्मान में इस बात पर विवाद चल रहा था कि अधिक प्रकाश कहां हो रहा है—पृथ्वी पर या आकाश में। पृथ्वी पर, वधू के घर में, सुन्दर स्त्रियों के मुख का प्रकाश था तथा अनगिनत दीपमालाओं का आलोक था। आकाश में, लाखों तारों का प्रकाश था ॥४९०॥

दीपिता दीपमालास्तद्भुवनान्तश्चकाशिरे ।
दिदृक्षागतनागानां फणामणिगणा इव ॥४९१॥

कन्या के घर में दीपमाला के दिये इस तरह चमकते प्रतीत होते थे जैसे नाग लोक से आए हुए नागों की फणों में मणिए चमक रही हों ॥४९१॥

तत्रस्थजलपात्रेषु सर्वत्रप्रतिबिम्बित: ।
दिष्ट्याभिवन्दनं कर्त्तुं चन्द्रो व्योम्नोऽप्यवातरत् ॥४९२॥

विवाह मण्डप के जल पात्रों में चान्द की प्रतिच्छाया देखकर लगता था कि चन्द्रदेव बधाई देने के लिए स्वयं आकाश से पृथ्वी पर उतर आए हैं ॥४९२॥

वीणावाद्यमृदङ्गोद्यदुच्चध्वनिमनोहरा ।
रात्रौ तत्र समायाता शोभायात्र वरस्य च ॥४९३॥

उस रात्रि को नियत समय पर जब वर तथा उसके सम्बधियों की शोभायात्रा कन्या के घर आई ता वीणा वेणु मृदग सहित आधुनिक बाजे-गाजे बजाती हुई सब को बड़ी सुन्दर लगी ॥४९३।

दुग्धश्वेताश्वमारुढो वरस्तारुण्यसुन्दर: ।
शुभ्रैरावतपृष्टस्थदेवेन्द्रश्रियमादधात् ॥४९४॥

वर भी सुन्दर लग रहा था। जवान था। सफेद कपड़े पहने था। उसकी ऊंची घोड़ी का रंग दूध जैसा सफेद था। ऐसे लगता था कि साक्षात् इन्द्र देवता ही वर का रूप धारण करके सफेद ऐरावत हाथी पर कन्या के घर आ गए हैं ॥४९४॥

वरमालार्पणार्थञ्च कन्याया मातुलोऽचिरम् ।
सखीपरिवृतां कन्यां गृहद्वारं समानयत् ॥४९५॥

कन्या का मामा कन्या को घर के दरवाजे पर ले आया जहां वरमाला डालने का शुभ कार्य सम्पन्न करना था। कन्या के साथ उसकी सहेलियां भी थीं, सगे सम्बन्धी भी थे ॥४९५॥

कन्याया अद्भुतं रूपं वीक्ष्य सौन्दर्यभासुरम् ।
वरपक्षजनाः सर्वे परमाह्लादमावहन् ॥४९६॥

कन्या के अलौकिक मोहिनीरूप को देखकर सभी बाराती बड़े प्रसन्न हो रहे थे ।४१९६॥

ददृशुः कन्यकां सर्वे निमेषरहिता जनाः ।
कोमलाङ्गीं समुत्फुल्लस्थलपद्मस्वरूपिणीम् ॥४९७॥

कन्या क्या थीं, खिले हुए गुलाब की कोमल मूर्ति जैसी! इतनी अनुपम सुन्दरता को देख दर्शकों के नेत्र खुले के खुले रह गए ॥४९७॥

कौमार्यगुणसौन्दर्यसम्भारापूरितान्तरा ।
मुष्णाति स्म सर्वेषां चित्तं कन्या किमद्भुतम् ॥४९८॥

अपने शारीरिक तथा मानसिक गुणों की सुन्दरता के कारण यदि उस कुमारी ने सभी के मन कोमोहित कर लिया था तो इस में आश्चर्य की बात क्या थी? ॥४९८॥

कन्यया वरमाला तु वरकण्ठे समर्पिता ।
वरेणापि वधूकण्ठे पुष्पमालार्पणं कृतम् ॥४९९॥

जब कन्या ने वर के गले में माला डाल दी तो वर ने भी कन्या के गले में जयमाला पहना दो ॥४९९॥

लोकाचारानुसारेण भोजनांनन्तरा वरः ।
प्रदानैर्वर्धितो नीतो विवाहमण्डपं पुनः ॥५००॥

फिर प्रचलित रिवाज़ के अनुसार वर को विवाह मण्डल में ले जाया गया। पहले उसे भोजन कराया गया तथा स्वर्णांगुलीयकादि वस्तुएं उपहार के रूप में दी गईं ॥५००॥

कन्यां तन्मातुलः तन्वीं यौवनोदयमञ्जुलाम् ।
रक्तशाटिकया युक्तामानयद्वरमण्डपम् ॥५०१॥

इसके पश्चात् कन्या का मामा किशोरी कन्या को लाल रंग की शाटिका पहना कर विवाहस्थल पर ले आया ॥५०१॥

स्तोकस्मितललामास्यां लोलायतविलोचनाम् ।
राजहंसगतिश्रेष्ठमन्थरागतिशोभनाम् ॥५०२॥

उस समय कन्या की शोभा दर्शनीय थी। लाज के कारण, सुन्दर-मुखी कन्या सकुचा रही थी। चंचल नयनो उस कन्या को चाल राजहंसिनियों की गति को शरमा रही थी ॥५०२॥

स्वर्णचम्पकवर्णाभां सर्वाङ्गसुमनोहराम् ।
सुरम्यरूपसम्पन्नां सुकेशान्तां सुलोचनाम् ॥५०३॥

कन्या का शरीर स्वर्णनिर्मित चम्पक फूल की तरह चमक रहा था। प्रत्येक अंग अत्यन्त सुन्दर था। उसके सुन्दर लम्बे केश लहरा रहे थे, मोटी-मोटी कजरारी आंखें बड़ी सुन्दर लगती थीं,

सारा शरीर हो सुन्दरता की अद्भुत मूर्ति जैसा लग रहा था ॥५०३॥

सुसंयोजितधम्मिलां स्थलपद्माङ्गकोमलाम् ।
मनोहार्यङ्गसम्पुष्टामङ्गराजविराजिताम् ॥५०३॥

उस सुन्दरी को श्रृंगार कराके अनुपम रूपवती बना दिया गया था। उसके काले केश सुन्दरता से बांध दिए गए थे । अपने मनोहारी यौवन एवं सम्पुष्ट तथा अत्यन्त कोमल अङ्गों के कारण वह गुलाव के फूल की तरह चारों ओर महक फैला रही थी ! ॥५०४॥

परितस्तारकापक्ष्मविचित्रकज्जलोज्ज्वलाम् ।
कामास्त्रसारभ्रूभङ्गयोगीन्द्रस्वान्तमोहिकाम् ॥५०५॥

काले काजल के कारण उसकी आखों के कोरों की उज्ज्वलता बढ़ रही थी और उस की काली भवें भगवान काम देव के कमान की तरह बड़े-बड़े योगोन्द्रों के मन को भो मोह रही थीं ॥५०५॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुमाञ्चितविग्रहाम् ।
सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विताम् ॥५०६॥

उसका सारा शरीर चन्दन, अगुरु, केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग से महक रहा था और सुन्दर मुखड़ा तथा कपोल पुलकित हो रहे थे ॥५०६॥

मुक्तापंक्तिद्युतिश्रेष्ठदन्तराजिविराजिताम् ।
सुकेशीं सुकपोलाढ्यां पक्वबिम्बाधरद्वयाम् ॥५०७॥

काले तथा लम्बे बालों की लटें उसके मनोहर कपोलों पर

लहरा रही थीं। उसके पतले सुन्दर होंठ पके विम्वफल की भांति अत्यधिक लाल थें। उसके स्वच्छ मोतियों जैसे चमकते दान्तों की पंक्ति की चमक दर्शकों की आंखों को चुंधिया रही थी ॥५०७॥

कर्णभालभुजाकण्ठनासाभूषणभूषिताम् ।
स्वर्णकङ्कणसंशोभिसालक्तककरद्वयाम् ॥५०८॥

उसके कोमल हाथ मेंहदी के रंग से लाल हो रहे थे। कलाइयों में वह स्वर्ण कंकण पहने थी। उसके कान, नाक, माथा, कण्ठ, भुजा आदि सब अंग आभूषणों से सुसज़िजत थे ॥५०८॥

शरत्प्रफुल्लपद्मागदलशोभिसुलोचनाम् ।
वक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तश्लक्ष्णस्मितसमन्विताम् ॥५०९॥

उसके नेत्र शरद ऋतु में पूरे खिले हुए कमल दल जैसे सुन्दर लग रहे थे। तिरछो तनी हुई उसकी काली भवें, और होठों पर खेलती मुसकान सबका मन मोहलेती थीं ॥५०९॥

आजानुलम्बितां रम्यां बिभ्रतीं पुष्पमालिकाम् ।
सुरूपां पद्मपत्राक्षीं भूषाभार समाकुलाम् ॥५१०॥

वह कमल नयनी घुटने तक लम्बी पुष्पों की माला धारण किए थी और स्वर्णाभूषणों के भार के नीचे दबी हुई थी ॥५१०॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां स्मेराननसरोरुहाम् ।
स्वर्णवर्णां सुवर्चोऽङ्गीं सुकपोलां सुभूषणाम् ॥५११॥

उस चन्द्रमुखी का चेहरा शरत् काल के पूर्णिमा के चान्द की भान्ति चारों ओर प्रकाश फैला रहा था। मुस्कराहट आने पर उसके मुख से जैसे कमल के फूल झरने लगते थे उसका सारा शरीर तपे हुए सोने जैसा चमकता था। उसके

अंगों से तेज बरस रहा था। अनेक गहनों के भार से वह लदी हुई थी ॥५११॥

ध्यानेऽधोमुखशोभाढ्यां हृदिचोऽर्ध्वं वराभिगाम् ।
चरणाभ्यां तु मार्गस्थां मनोहृद्भ्यां वरान्तिकाम् ॥५१३॥

सिर नीचा किए वह ऐसे लगती थी कि ध्यान में मग्न है, पर वास्तव में उसका ध्यान पति के चरणों की ओर था। वैसे तो वह धीरे-धीरे चल रही थी, पर हृदय एवं मन से यही चाह रही थी कि पंख लगा कर उड़ती हुई पति के पास पहुंच जाए ॥५१३॥

कान्तकुण्डलयुग्मोद्यत्प्रभासिक्तमुखाम्बुजाम् ।
स्थूलदेहेन मार्गस्थां सूक्ष्मेन च पतिम्वराम् ॥५१४॥

उसके कानों में झूलते हुए सुन्दर कांटे उसके चमकते मुखड़े पर पड़कर चकाचौंध पैदा कर रहे थे। उसका शरीर चल रहा था पर उसके अन्दर जो हृदय था वह तो पति का हो चुका था और वह चाहती थी कि जितना शीघ्र हो पति के पास जा बैठे ॥५१४॥

भास्वद्वस्त्रावृता कन्या प्राभाद् दीपप्रभोज्ज्वला ।
शेषच्छायेव माणिक्यैः कृतालोका फणोद्भवैः ॥५१५॥

विष्णु भगवान की शय्या, शेषनाग, की शोभा निराली है। उस पर हज़ारों फणों से निकल कर जब मणियों का प्रकाश पड़ता है तो शेष मूर्त्तिका सौन्दर्य हजारों गुणा बढ़ जाता है। उस प्रकार विवाह योग्य कन्या काशरीर सुशोभित हो रहा था। वह भी झिलमिल-झिलमिल करते कपड़े पहने थी जिन पर हजारों दीपों का स्वच्छ प्रकाश चमक रहा था ॥५१५॥

चित्रितं भूषितं तस्यास्तन्वंग्यास्तत्कलेवरम् ।
सज्जितो जययात्रार्थं कामस्य स्यन्दनो व्यभात् ॥५१६॥

कन्या का कोमल शरीर (स्वर्णाभूषणों की सजावट से) ऐसे प्रतीत होता था कि कामदेवता ने त्रिलोकी विजय करने के लिए अपने रथ को तैयार कर के खड़ा कर दिया है ॥११६॥

विवाहमण्डपः श्लक्ष्णमर्मरोपलनिर्मितः ।
कदम्बकुन्दमन्दारमालतीमालनिर्मलः ॥५१७॥

विवाह का मण्डप चिकने संगमर्मर पत्थरों से बना था । उस मण्डप में स्थान स्थान पर कदम्ब, कुन्द, मालती एवं मन्दार पुष्पों की मालाएं झूल रही थीं ।।५१७॥

कदलीस्तम्भशोभाढ्योऽशोकपत्रसुशोभनः ।
विद्युत्प्रदीपसन्दीप्तो ध्वनियन्त्रविराजितः ॥५१८॥

कहीं केले के स्तम्भ शोभा देते थे, कहीं अशोकपत्रों के हार लटक रहे थे । कही बिजली के बल्बों की मालाएं थी और कहीं ध्वनियन्त्रों से मीठे स्वर निकल रहे थे ॥५१८॥

रंगानुरंगसच्चित्रसमुच्चयमनोहरः ।
नैकशिल्पकलारम्यो व्यभादप्रतिमोभुवि ॥५१९॥

अनेक रंगों के मनोहर चित्र वहा लगे थे । स्थान-स्थान पर कलाकारों के शिल्प का कमाल दिखायी दे रहा था ॥५१९॥

नानावर्णांशुकाच्छन्नकुलस्त्रीगणशोभनः ।
पुष्पाकीर्ण मिवोद्यानमराजन्मण्डपोत्तमः ॥५२०॥

उस मण्डप में विविध रंगों के झलक मलक कपड़े पहने अनेकों सुन्दर स्त्रियां ऐसे लगती थीं जैसे बगीचे में भान्ति-भान्ति के रंगीन फूल महक रहे हैं ॥५२०॥

नानास्तम्भा अभासन्त चित्रव्याप्तिविचित्रिता: ।
वृत्तान्तबोधकाकारा: श्रीविष्णोर्नृस्वरूपिण: ॥५२१॥

वहां अनेकों स्तम्भ थे, जिन पर कलाकारों ने चित्र खीचे हुए थे। अधिक चित्रों में मनुष्य रूप धारण किए भगवान विष्णु की लीलाओं के दृश्य थे ॥५२१।

अनेकाकृतिशोभाढ्या विविधैश्वर्यचिह्नका: ।
तत्तज्जन्मावतारादिचरित्रोद्बोधहेतव: ॥५२२॥

विष्णु भगवान ने जब-जब, जो-जो अवतार धारण किए, उन सब का पूरा हाल उन चित्रों में दिखाया गया था। चित्र बहुत सुन्दर थे और उनसे भगवान के ऐश्वर्य का पता चलता था ॥५२२॥

नानासृष्ट्यन्तरे यानि विष्णुना संधृतानि हि ।
तानि सर्वाणि रूपाणि स्तम्भेषु चित्रितानि वै ॥५२३॥

अनेकों बार सृष्टियां हुई, और अनेकों बार भगवान ने अवतार धारण किए। उन सब रूप-आकृतियों के चित्र उन स्तम्भों पर चित्रित थे ॥५२३॥

शुभ्रस्फटिकसंकाशा दीप्तदीपकचन्द्रका: ।
व्यद्योतन्त शुभाकारा: सर्वे स्तम्भास्तु मण्डपे ॥५२४॥

मण्डप में बने स्तम्भों का साफ-सफेद रंग देख ऐसे लगता था कि वे स्तम्भ बिल्लौर के हैं जिन की शोभा बिजली के बल्बों की रग बिरंगी किरणें पड़ते से अवर्णनीय हो जाती थी ॥५२४॥

मण्डपात्किरणा यान्ति प्रोज्ज्वला व्योममार्गगा: ।
अध ऊर्ध्वं तथा पार्श्वेदिक्षु सर्वविदिक्षु च ॥५२५॥

मण्डप से विद्युत्दीपकों की किरणें निकल कर आकाश कि ओर जाती प्रतीत होती थीं। ऊपर-नीचे, इधर-उधर, इस दिशा में उस दिशा में, सब जगह रंगीन प्रकाश हो रहा था ।।५२५।।

तादृशो मण्डपस्तादृग्वरासनमथापि च ।
नान्यलोकेषु विद्यते ह्यवर्ण्या तच्चमत्कृतिः ।।५२६।।

इस प्रकार का शोभायुक्त विवाह मण्डप किसी ने तीनों लोकों में न देखा होगा । वर के आसन की शोभा भी अवर्णनीय थी ।।५२६।।

दीपवृक्षा नृवाह्याश्च स्फुरन्तस्तत्रमण्डपे ।
अधुर्नक्षत्रमध्योद्यत्कृत्तिकर्क्षचयोपमाम् ।।५२७।।

मण्डप के अन्दर तीव्र प्रकाश देने वाले गैस, अथवा टेबल-लैम्पों को लोग उठा कर कभी इधर कभी उधर रख देते थे। उन्हें देखकर आकाश में अन्य नक्षत्रों के बीच कृत्तिका-नक्षत्र का भ्रम उत्पन्न होता था ।।५२७।।

स्फुरज्ज्योतिप्रभादीप्ता दीपास्तत्र ह्यधारयन् ।
दर्शनाप्तसुरोन्मुक्तसुवर्णकुसुमश्रियम् ।।५२८।।

इस अद्वितीय विवाह महोत्सव के हर्षोल्लास को देखने के लिए स्वर्ग के देवता भी आए हुए थे। उन्होंने प्रसन्न होकर सुनहरी फूलों की वर्षा कर दी। वही वर्षा बिजली के दीपक बन कर सुशोभित हो रही थी ।५२८।।

वरासनं चतुष्पादं पौरटं सुमनोहरम् ।
व्यराजत् सूर्यबिम्बाभस्वर्णपत्रकराजितम् ।।५२९।।

वर के बैठने के लिए चार पायों पर स्थित बहुत सुन्दर वर

सिंहासन वहां सजा कर रखा था। सूर्य मण्डल की तरह चमक रहे स्वर्ण पत्र उसमें जड़े थे ।।५२९।।

तत्र तिष्ठन्वरस्तेजःपरिधिद्युतिमन्मुखः ।
उदयाचलकूटस्थबालसूर्यभ्रमं व्यधात् ।।५३०।।

उस सुन्दर सिंहासन पर जब यौवनतेज से परिपूर्ण वर विराजमान हुआ तो ऐसे लगा कि उदय पर्वत पर सूर्य भगवान् प्रकट हो रहे हैं ।।५३०।।

मालतीकेतकीकुन्दपुष्पमालोपशोभितः ।
रूपानुरूपावयवो हर्षहासलसन्मुखः ।।५३१।।

मालती, केतकी और कुन्दपुष्पों की मालाएं पहने वर बड़ा सुन्दर लग रहा था । उसके चेहरे पर मुस्कराहट की हल्की सी रेखा बड़ी भली लगती थी ।।५३१।।

स्फुरत्प्रकाशसंराजद्भालपट्टसुभासुरः ।
नैकचारुचकोराक्षीस्थिरवृत्यैकचन्द्रमाः ।।५३२।।

बिजली लैम्पों का प्रकाश अत्यधिक होने के कारण वर का चौड़ा माथा चमक रहा था । वहां बैठी चकोर-नयनी सुन्दरी युवती स्त्रियों को वर पूर्णमासी के चान्द जैसा लग रहा था, जिस को बार-बार देख कर भी उनके नयन थकते नहीं थे ।।५३२।।

तेजस्वी तरुणः सौम्यसुकुमाराङ्गकोमलः ।
सकेसरसुगन्धाढ्यकस्तूरीचन्दनार्चितः ।।५३३।।

बर पुर्णयुवा था । सुन्दर था । तेजस्वी था । कोमलाङ्ग था । केसर कस्तूरी चन्दनादि की सुगन्ध से उस का सारा शरीर महक रहा था ।।५३३।।

सुवर्णसूत्रतन्त्वाभश्मश्रु रेखाविराजितः ।
उत्कण्ठितकुरङ्गाक्षीयुवतीभिः समीहितः ॥५३४॥

वर के सुन्दर मुखड़े पर मूंछ और दाढ़ी के स्थान पर सोने के बारीक तारों जैसी सूक्ष्म बालों की रेखा बड़ी भली लगती थी, जिसको देख मृगनयनी युवतियां बहुत प्रसन्न हो रही थीं ॥५३४॥

लसत्कुसुमहारालिसमावृतमुखो वरः ।
शरन्मेघसमाच्छन्नसुधांशोस्तुल्यतामधात् ॥५३५॥

वर का चेहरा फूलों की मालाओं और सेहरे से कुछ ढका था, जैसे शरद ऋतु के चान्द को बादल घेर लेते हैं ॥५३५॥

विष्णुरूपो वरो यत्र वधूर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ।
भूमौ वैकुण्ठतुल्यः स मण्डपः सोऽप्यत्यरोचत ॥५३६॥

विवाह का मण्डप तो बिल्कुल स्वर्ग जैसा सुहावना लगता था । वहां वर महोदय भगवान् विष्णु का रूप धारण करके बैठे थे और कन्या साक्षात् देवी महालक्ष्मी लग रही थी ॥५३६॥

योषिदुल्लासहासाढ्यं वरस्तत्र सुमण्डपम् ।
आसादयत्सनक्षत्रं पूर्णचन्द्र इवाम्बरम् ॥५३७॥

उस मण्डप में सुन्दरी स्त्रियों के चेहरे अतीव हर्षोल्लास के कारण अत्यधिक चमक रहे थे । उन स्त्रियों के मध्य बैठे वर महोदय ऐसे सज रहे थे, जैसे पूनम का चन्द्रमा विविध नक्षत्र सितारों की मण्डली में सुशोभित हो रहा हो ॥५३७॥

अशोभत वरश्चापि समातिष्ठन् वरासने ।
पुण्यतीर्थपवित्राम्भःसंस्कृतस्नानसुन्दरः ॥५३८॥

पवित्र तीर्थों के पावन जल से स्नान करके व्याह के मण्डप में वर आया था और जब उसे सिंहासन पर बैठाया गया तो वह शोभा निराली ही थी ।।५३८।।

वर्धितश्चन्दनैः पुष्पैरक्षतैश्च सुवासितैः ।
पुष्पाक्षतजलद्रव्यप्रोक्षणैः संस्कृतस्तथा ।।५३९।।

वर का मस्तक चन्दन, पुष्प एवं सुगन्धित अक्षतों से सज रहा था । इन्ही सब द्रव्यों में जल मिला कर उस का पवित्र प्रोक्षण किया गया ।।५३९।।

भृशं सम्मानितः सर्वैर्दत्ताशीश्चापि भूसुरैः ।।
समादृतो वधूपक्षैरीहितश्च वधूजनैः ।।५४०।।

सब लोग वर का बड़ा सम्मान कर रहे थे । ब्राह्मण वर्ग बर को आशीर्वाद दे रहा था । कन्या के सब सम्बन्धी वर से आदर सहित बातें करते थे । कन्या की सहेलियां वर को बार-बार देखने को उत्सुक हो रही थीं ।।५४०।।

कृत्वा सुतिलकं भाले कराभ्यां मंगलान्वितः ।
वामाङ्ग्या कन्यया कामं वामाङ्गे सुविभूषितः ।।५४१।।

वर के चौड़े माथे पर सुन्दर तिलक लगाया गया । कलाइयों पर मंगल सूत्र बांधा गया । फिर सुन्दरी कन्या को भी वहां लाकर वर की बाईं ओर बैठा दिया गया ।।५४१।।

रम्ये सिंहासने तत्र निषण्णस्तु वरो यदा ।
यज्ञकुण्डसमीपस्थः प्रेरितो हवनाय सः ।।५४२।।

जब वर-कन्या यथास्थान यज्ञकुण्ड के पास सिंहासनों पर बैठ गए तो ब्राह्मणों ने वर को पूजा तथा हवन आरम्भ करने को कहा ५४२।।

समातिष्ठन्द्विजास्तत्र यज्ञकार्यविचक्षणाः ।

नानादेशागताः सर्वकर्मकाण्डविशारदाः ॥५४३॥

वहां कई ब्राह्मण पहले से ही बैठे थे। वे अनेक देशों से आये हुए थे। वे सभी ब्राह्मण कर्मकाण्ड तथा यज्ञ कराने में अत्यन्त प्रवीण थे ॥५४३॥

गणेशपूजनं कृत्वा मन्त्रानुच्चार्य वैदिकान् ।

वाचितः स्वस्तिपाठस्तैः पण्डितैर्वेदपारगैः ॥५४४॥

वेद शास्त्रों के ज्ञाता उन विद्वान् पण्डितों ने ऊंचे स्वरों में वेदमन्त्रों को गा कर स्वस्ति पाठ एवं गणेश पूजन करवाया ॥५४४॥

समिधः सर्वजातीया अक्षतानां कणास्तथा ।

यज्ञोपकरणाश्चापि तत्रासन्नतिसंख्यकाः ॥५४५॥

यज्ञकुण्ड के पास अनेक प्रकार की समिधाएं, हवन की सामग्री तथा अक्षतों के ढेर लगे हुए थे ॥५४५॥

पाणिग्रहाक्रियारब्धयज्ञधूमच्छलान्मुहुः ।

सुखोच्छ्वासो वरस्येव हर्षोत्कर्षैर्विनिर्गतः ॥५४६॥

विवाह के समय हवन कुण्ड से धुआं निकल कर ऊपर आकाश में चला जाता था। ऐसे लगता था कि वर बहुत प्रसन्न है और अत्यधिक हर्ष के कारण उसके मुख से प्रसन्नता के निःश्वास निकल रहे हैं ॥५४६॥

वरहस्ते यदा हस्तः कन्याया विनिवेशितः ।

पुष्पवृष्टिं तदाऽकार्षुर्योषितो हर्षगद्गदाः ॥५४७॥

जिस समय ब्राह्मणों के आदेशानुसार कन्या का हाथ वर के हाथ में दे दिया गया, तो वहां उपस्थित सब नारियां हर्ष से गद्‌गद हो कर पुष्पवृष्टि करने लगीं ।।५४७।।

विवहावहै तावेव प्रजां प्रजनयावहै ।

विन्दावहै बहून्पुत्रान् सह रेतोदधावहै ।।५४८।।

वर और कन्या ने ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित पवित्र वेद मन्त्रों को सुना कि आज हम दोनों विवाह की डोर से बांध दिए गए हैं । हम दोनों परस्पर मिल कर सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रयत्न करेंगे । हम दोनों के बहुत सारे पुत्र होंगे ।४५८।।

इत्यादि श्रुतिमन्त्रांश्च तथान्यांश्च प्रशृण्वतोः ।
द्वयोः स्वेदलवो रोमपुलकश्चाभवन्महान् ।।५४९।।

इस प्रकार के कुछ अन्य मन्त्रों को भी सुनते समय वर और कन्या के शरीर रोमाञ्चित हो उठे, और लाज के मारे उनके माथे पर पर पसीने की बून्दें झलकने लगीं ।.५४९।।

तदा वाद्यान्यवाद्यन्त वेदघोषोऽप्यघोष्यत ।
अभूवन् हर्षशब्दाश्च नारीगीतिमनोरमाः ।।५५०।।

उसी समय जोर शोर से वाजे बजने लग गये । स्त्रियों ने समयोचित गीत गाने प्रारम्भ कर दिए। और ब्राह्मण वर्ग उच्च स्वर से वेद मन्त्रों का गायन करने लगा ।।५५०।।

वेदघोषा द्विजानां च गीतिघोषाश्च योषिताम् ।
वाद्यानां तुमुला नादा अकार्षुर्बधिरान् जनान् ।।५५१।।

ब्राह्मणों के वेदगान से, स्त्रियों के मधुर गीतों से तथा वाजे

गाजे के जोर-जोर से बजने के कारण, उस समय इतना शोर उठा कि लोगों के कान बहरे होने लगे ॥५५१॥

वाद्यमानोद्यतातोद्यतोद्यत्प्रतिरवच्छलात् ।
सुप्रसन्नावरस्येवं प्रोचुः पूर्णाशिषो दिशः ॥५५२॥

ऊंचे स्बर से वज रहे बाजे, तथा नाना प्रकार के वाद्ययन्त्रों का सब तर्फ से शोर सुन कर लगता था कि दशों दिशायें भी प्रसन्न हो कर दूल्हे राजा को आशीर्वाद दे रही हैं ॥५५२॥

मुहूर्त्तमात्रमाकाशाज्जलवृष्टिमिषाद् भृशम् ।
उन्मुक्तं किल सन्तुष्टैर्देवैः कुसुमवर्षणम् ॥५५३॥

इतने में कुछ क्षणों के लिए आकाश से बूंदाबादी हुई, जैसे देवता लोग भी प्रसन्नता के मारे पुष्प वृष्टि कर रहे हों ॥५५३॥

कन्या बन्धुजनो मेघसङ्घतुल्यस्तपात्यये ।
नानोपायनवर्षौघैरवर्षत् समुदं वधूम् ५५४॥

कन्या के सम्बन्धी उस समय कन्या को इतने सारे उपहार भेंट करते गये जैसे सावन के बादल ग्रीष्मऋतु के पश्चात् वर्षा की झड़ी लगा देते हैं और फिर थमते ही नहीं ॥५५४॥

अनल्पा भिक्षुकाः कल्पवृक्षकल्पं वरं न के ।
भृङ्गा इवागतास्तत्र दानकल्पितकल्पनाः ॥५५५॥

अनेकों भिक्षुक भी वहां आकर वर के इर्द-गिर्द दान प्राप्त करने की इच्छा से इस तरह इकट्ठे होने लगे जैसे कल्पवृक्ष को भ्रमरों के झुण्ड घेर लेते हैं ॥५५५॥

प्राक्प्राप्तोपायनैस्तुष्टो वरोऽपि तत्क्षणं व्यधात् ।
स दानविभ्रमास्तांस्तान् धनदेनापि दुष्करान् ॥५५६॥

वर के पास जो अनेक भेटें और उपहार पड़े थे उन्हीं को वह भिक्षुकों को देता जाता था। इतना दान तो कुवेर देवता ने भी कभी न किया होगा ॥५५६॥

परीधानान्नवस्त्राणां दाता तस्मिन्महोत्सवे ।
आश्चर्यकल्पवृक्षत्वं त्यागी सर्वाथिनामगात् ॥५५७॥

वर के पिता ने भी धन वस्त्र दे कर उस विवाहोत्सब के दिन अत्यधिकदान करके कल्पवृक्ष को भी आश्चर्य में डाल दिया ॥५५७॥

पिता वरस्य सन्तुष्टः सोऽर्थिनोऽतोषयद्धनैः ।
मरुदेशानपःपूरैर्महेन्द्र इव नीरसान् ॥५५८॥

वर का पिता उस समय इतना प्रसन्न था और धन को इस तरह लुटा रहा था जैसे इन्द्र देवता सूखे मरुदेशों में मूसलाधार बारिश कर रहा है ॥५५८॥

पित्रा वरस्य सामोदं प्रसादामृतवर्षिणा ।
महद्दारिद्र्यदावाग्निर्दीनानां क्षपिता क्षणात् ॥५५९॥

वर के पिता ने बड़ी प्रसन्नता से दीन भिक्षुक लोगों को इतना अधिक दान दिया कि भिखारी भी धनी होते गये ॥५५९॥

अत्रान्तरे वधूपक्षैर्भोजिता वरपक्षगाः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा लेह्यैश्चौष्यैः पानैः सुसंस्कृतैः ॥५६०॥

उधर, इतने समय में, वधूपक्ष के लोगों ने बरातियों को अनेक प्रकार के भोजन खिलाये, जिन में कुज भोज्य थे, कुछ पेय थे, कुछ चोष्य थे और कुछ लेह्य ॥५६०॥

सवस्त्रकाष्ठपट्टेषु सज्जितानि यथाक्रमम् ।
राजताद्भुतपात्रेषु शाकानि विविधानि तैः ॥५६१॥

अनेक प्रकार की साग सब्जियां भी थीं । सब खाद्य-पदार्थ चमकते हुए चान्दी के बर्त्तनों में डाल मेजों के ऊपर सजा कर रख दिए थे, जिनको श्वेत वस्त्र डाल कर ढका हुआ था ॥५६१॥

शीतोष्णजलपानानां दध्नाञ्च पयसामथ ।
सूपानां पेयवस्तूनां कृतास्तत्र च वार्धयः ॥५६२॥

जलपान के लिए ठण्डे और गर्म दोनों प्रकार के पेय पदार्थ थे, जैसे नाना प्रकार के शर्बत, सोडावाटर, काफी, चाय आदि पेय पदार्थ सूप, दूध, दही, लस्सी आदि की तो जैसे वहां नदियां बह रही थीं ॥५६२॥

मिष्टान्नव्यञ्जनादीनां नानाऽन्नानां तथैव च ।
घृतस्य नवनीतस्य स्थितास्तत्रोच्चपर्वताः ॥५६२॥

नाना प्रकार के अन्न, नमकीन एवं मीठे चावल, पुलाव, भान्ति भान्ति की मिठाइयां, कई भान्ति के व्यञ्जन मेजों के ऊपर सजे थे । घी, नवनीत (माखन) आदि पदार्थों की तो वहां कोई कमी ही नहीं थी ॥५६३॥

लवणं तिक्तमामिष्टं मधुरं चाम्लमित्यपि ।
यथा यादृग् यथेष्ठं च वरपक्षाय चार्पितम् ॥५६४॥

अनेक प्रकार के नमकीन पदार्थ भी थे, तीखे पदार्थ भी थे, मीठे भी, खट्टे भी । सब प्रकार के खाने तथा पीने का प्रबन्ध था । जितनी जिसकी इच्छा होती थी, उतना लेकर बराती खाने पीने में मस्त हो गये ॥५६४॥

पक्वान्नराशयोऽदभ्रास्तलाभ्रमुभ्रमप्रदाः ।

अधुरभ्रभ्रमच्छुभ्रशरदभ्रश्रियोपमाम् ॥५६५॥★

पके हुए अन्न पदार्थों के तो ढेर लगे थें । सफेद चावल की राशियां देख कर भ्रम होता था कि शरद् ऋतु के श्वेत बादल जमीन पर उतर आए हैं अथवा इन्द्र देवता के वाहन ऐरावत हाथियों की पक्तियां लग गयो हैं ॥५६५॥

न तदन्नं न तद्भोज्यं न तत्पेयं न तत्फलम् ।

न ते भोगा न ये तत्र भोजिता भोजनक्षणे ॥५६६॥

ऐसा कोई व्यंजन, खाना, अन्न, फल एवं पदार्थ बाकी नहीं बचा था, जिसका बरातियों के खाने के समय, भरपूर प्रवन्ध न कर दिया गया था ॥५६६॥

वरपक्षजनानाञ्च शयनेषु मृदुष्वथ ।

सेवामकार्षु:सत्सौम्याः सेवकाः सुसमाहिताः ॥५६७॥

जब वराती लाग भरपूर भोजन कर चुके तो उनके विश्राम के लिए कोमल विस्तर बिछा दिए गए । रात भर उनकी मुट्ठी चापी पान-सिगरेट तथा अन्य सेवा कार्यों के लिए चुस्त नौकर-चाकर नियुक्त कर दिए गए, कि बरातियों को किसी प्रकार की असुविधा न हो ॥५६७॥

संगीतानि कुमारीणां विशेषाच्छ्रावितानि तैः

गंधर्वरागरागिण्यो वाद्यानि चोत्तमानि च ॥५६८॥

आधी रात के समय शास्त्रीय गीतों की मधुर ध्वनि से गाने वालियों ने बड़े मीठे गीत गा-गा कर बरातियों को पूर्णतया

सन्तुष्ट कर दिया। वार्यलिन क्लारियोनेट् आदि अंग्रेजी वाद्ययन्त्रों पर भी संगीत बजा कर सुनाया गया ॥५६८॥

वरस्यापि च बन्धूनां कृत्वा सेवाप्रपूजनम् ।
नाट्यानि चातिरम्याणि दर्शितानि निशार्धके ॥५६९॥

आधी रात के पश्चात् विवाहकार्य समाप्त हो जाने पर दूल्हेराजा को तथा उसके सगे सम्बन्धियों को सेवा पूजा करके उन्हे सुन्दर नाटक भी दिखाए गये। ५६९॥

परेद्युर्वरबन्धूंश्च दर्शितानि बहून्यपि ।
गणिकागणनृत्यानि मनोमोहकराण्यथ ॥५७०॥

विवाह हो जाने के दूसरे दिन बरातियों को गणिकाओं के मनमोहक कत्थक भरतनाट्यम् आदि नृत्य भी दिखाए गए ॥५७०॥

एकस्मिन्मण्डपेऽगायन् विविधाः कुलयोषितः ।
वाण्या संस्कृतया सर्वा मिष्टस्वरमनोरमाः ॥५७१॥

उस दिन एक अलग मण्डप में ऊंचे कुल की सभ्य एवं सुन्दरी स्त्रिया बड़े मीठे स्वरों में मनोरम गीत गा रही थीं ॥५७१॥

सुचारुध्वनिमाधुर्यकृतगीतिकमङ्गलाः ।
वाराङ्गणागणाश्चापि प्रानृत्यन्मण्डपान्तरे ॥५७२॥

तथा दूसरे मण्डप में मधुर ध्वनि में गाती हुई गणिकायें अपने नृत्य से बरातियों के मन मोह रही थीं ॥५७२॥

तेष्वेकं गणिकाश्रेष्ठनृत्यमासीत्सुशोभनम् ।
विलासस्निग्धनेत्राभ्यां कटाक्षे साप्यमोचयत् ॥५७३॥

उनमें से एक नवयौवना गणिका का नृत्य कुछ वरातियो ने वड़ा पसन्द किया क्योंकि डान्स करते समय वह कभी कभी अपने तिरछे नयनों के तीर भी चला देती थी ।।५७३।।

व्यधान्मन्दस्मितं तस्याः प्रेक्षकाणां रसोदयम् ।
दर्शयन्त्या मुहुश्चित्ताकर्षकानङ्गविभ्रमान् ।।५७४।।

नृत्य करते करते समय वह मनमोहिनी जब मुस्करा देती थी तो दर्शक उस पर लोट पोट हो जाते थे । साथ ही साथ अपने चित्ताकर्षक अङ्गों का वह कामोत्तेजक प्रदर्शन भी करती जाती थी ।।५७४।।

वीणावेणुमृदङ्गोद्यन्निस्वानसुमनोरमम् ।
नेत्रलास्याद्भुतं चारुभुजाक्षेपातिसुन्दरम् ।।
गणिकानां मनोहारि नृत्यं वादित्रसंयुतम् ।
वीक्ष्यमाणा जनाः सर्वे परं हर्षं प्रपेदिरे ।।५७५।।

दर्शक गणिकाओं का नृत्य तथा संगीत देख सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । अपनी भुजाओ को इधर उधर घुमाती हुई गणिकाएं अपनी मदभरी आंखों से कटाक्ष फेंकती हुई बड़ीं सुन्दर लग रही थीं । साथ ही सितार, सराङ्गी, वीणा बांसुरी, तबला, मृदंग आदि अनेक वाद्य यन्त्रों की मीठी ध्वनि सहित संगीत सुनकर सब लोग मुग्ध हो रहे ।।५७५।।

वाराङ्गनामुखोद्गीतगीतिश्रुतिजडीकृताः
कृत्येषु चालसा जाताः सेवकाः परिचारकाः ।।६७६।।

जब गाने वाली गणिकाओं को मधुर आवाज नौकर चाकरों के कानों में पड़ती थी, अथवा जब नर्त्तकियों के नृत्य से आनन्दित

होकर दर्शक वाह्-वाह् कर उठते थे तो सेवकों का ध्यान भी उधर आकर्षित हो जाता था, और वह भी सेवाकार्यों में सुस्त पड़ जाते थे ।।५७६।।

समुल्लासकराश्चापि विवाहदिवसोचिता: ।
कवीनां कवितापाठा आनन्दोत्सवसुन्दरा: ।।५७७।।

नाच गाने का कार्यक्रम समाप्त होने पर, कवि सम्मेलन का प्रबन्ध हुआ । गण्य मान्य कवियों ने विवाहसमयोचित कविताएँ पढ़ कर सुनायीं जिनको सुन-सुन कर सभी बाराती आनन्दित हो उठे ।।५७७।।

प्रोत्फुल्लमानसान्सर्वानकार्षुर्दर्शकानथ ।
नर्मालापाश्च भण्डानां परिहासमनोहरा: ।।५७८।।

फिर विदूषकवर्ग और भाण्डलोगों की बारी आई । उनकी हंसी ठट्ठा और मजाक भरी बातें सुन कर सब के पेट में बल पड़ने लगे ।।५७८।।

नगसन्निभदेहानां मल्लानां शक्तिशालिनाम् ।
प्रदर्शितानि युद्धानि चित्तानन्दकराण्यथ ।।५७९।।

इसके पश्चात् पहलवानों द्वारा कुश्तियों का कार्यक्रम दिखाया गया । पहलवानों के शक्तिशाली वज्रों जैसे भीमकाय शरीर देख कर डर लगता था । उनकी कुश्तियां देख देख सब के चित्त जोश से भर उठे ।।५७९।।

दृष्टिबन्धा अनेके च जनानामोदयंस्तदा ।
इन्द्रजालानि चान्यानि बुद्धिभ्रान्तिकराण्यपि ।।५८०।।

फिर जादूगरों के तिलिस्मी खेल दिखाए गए । इन्द्रजाल

और दृष्टिवन्ध की जादूगरी देख कर सब बराती लोग अचम्भित हो गये ॥५८०॥

पिता वरस्य सामोदं सानन्दं व्यचरत्तदा ।
सुगन्धमकरंदाढ्ये यथा मधुकरो मधौ ॥५८१॥

उस समय वर के पितामहोदय की व्यस्तता देखने योग्य थी। वे कभी इधर आते, कभी उधर जाते, कभो यहां, कभी वहां। वसन्त ऋतु में जब फूलों की सुगन्ध दशों दिशाओं में फैल रही होती है, तो क्या भंवरे कभी एक ही स्थान पर ठहरते हैं ? ॥५८१॥

नैकवस्त्रान्नधान्यादिप्रदानैः सुबहून् द्विजान् ।
अकार्षीददरिद्रांश्च पुत्रोद्वाहमहोत्सवे ॥५८२॥

वर के पिता महोदय पुत्र के विवाह के आनन्द में मस्त होकर इतना अधिक दान करते जाते थे कि उन्होंने अनेकों दरिद्र भिखमंगों को अमीर बना दिया। ॥५८२॥

पुष्पवृन्दभराक्रान्ता लतेव नवशाखिनः ।
स्वर्णभूषणसम्भारैर्व्यराजतानता वधूः ॥५८३॥

उधर कोमलाङ्गी दुल्हनरानी अनेकों स्वर्णभूषण पहने बैठी थी। भूषणों के भार तले दबी हुई वह ऐसे लगती थी कि किसी वृक्ष की कोमल लता फूलों के भार से लद कर नीचे को ओर झुक गयी है ॥५८३॥

सीमन्ते मृगनेत्र्याश्च चन्द्रकं मौक्तिकैः सह ।
रात्रिसीमन्तनीजुष्टसतारेन्दुश्रियं दधौ ॥३८४॥

उस मृगनयनी वधू के माथे पर काले बालों के ठीक नीचे,

पहना हुआ स्वच्छ मोतियों युक्त चन्द्रक (आभूषण, टिक्का) ऐसे सुशोभित हो रहा था कि रात्रिदेवी ने सितारों समेत चन्द्रमा को अपने बालों में सजा लिया है ॥५८४॥

सिन्दूरतिलको भाले व्यधात्तस्या नतभ्रुवः ।
सुवर्णपट्टिकास्यूतपद्मरागमणिश्रियम् ॥५८५॥

तपे सोने की भांति चमकते उसके चौड़े माथे पर सिन्दूर के तिलक को देख ऐसे प्रतीत होता था कि किसी ने स्वर्ण की बनी पाटी पर लाल रंग की पद्मराग मणि रख दी है ॥५८५॥

अत्यशोभत ताटङ्कं कर्णयोः कान्तिभासुरम् ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥५८६॥

जैसी चमक सैंकड़ों सूर्यों की ग्रीष्म ऋतु की दुपहरी में होती है, वैसी ही चमक उसके कानों में हिल रहे कांटों की जोड़ी की हो रही थी ॥५८६॥

सीमन्तराहुसंग्रस्तललाटार्द्धेन्दुनिर्यतः ।
सुधाबिन्दूत्करस्यास्या बालपाश्या भ्रमं व्यधात् ॥५८७॥

उसके काले केशों के नीचे आधे चान्द जैसे चमकते चौड़े माथे पर झूल रही, शुद्ध श्वेत मोतियों वाली बालपाश्या (आभूषण) को देख भ्रम हो जाता था कि कहीं चन्द्रमा से (जिसका आधा भाग काले ग्रह राहु ने निगल लिया हो) अमृत की श्वेत बून्दें तो नीचे नहीं गिर रहीं ? ॥५८७॥

भातिस्म शिविकारूढ़ा रूपदीप्ता बधूरसौ ।
स्वर्णसिंहासनान्तःस्था यथेन्द्राणी मृगेक्षणा ॥५८८॥

जब दुल्हन को डोली में बैठा दिया गया, तो उसकी शोभा अवर्णनीय थी । डोली में बैठी दुल्हन ऐसी सज रही थी जैसे

इन्द्र देवता की मृगनयनी महारानी सोने के सिंहासन पर सुशोभित हो रही हैं ।।५८८।।

नेत्रयुग्मं विलोलाक्ष्या तन्वंग्या अंशुकावृतम् ।
मध्येऽम्भसश्चलच्चंचद्गतिकं शफरद्वयम् ।।५८९।।

दुल्हन के चंचल नेत्र बारीक रेशमी दुपट्टे के अन्दर से झांक रहे थे। लगता था कि नीले पानी के अन्दर मछलियोंका जोड़ा हिल रहा है ।।५८९।।

क्षीरसागरकल्लोललोलायतविलोचना ।
चित्तं मुष्णाति देवानां मनुष्याणां तु का कथा ।।६९०।।

दुल्हन की मोटी-मोटी चंचल आंखें इधर उधर, ऊपर नीचे ऐसे हिलजुल रही थीं, जैसे क्षीर समुद्र की लहरें। उन की चंचलता देख कर तो देवताओं का मन भी चलायमान हो जाता था। मनुष्यों की क्या दशा होती होगी ? ।।५९०।।

दलदरविन्दमनोरमनयनायाश्चन्द्रवदनायाः ।
तस्या यो हि वरः किल तस्य
तपस्याफलं शस्तम् ।।५९१।।

ऐसी कमलनयनी, अनुपम सुन्दरी पत्नी जिस वर को मिली, उसने पूर्व जन्म में कितने पुण्य कर्म किये होंगे इस बात को प्रशंसा सब लोग कर रहे थे ।।५९१।।

श्रुत्वैतन्मुनयस्तस्या विवाहोत्सववर्णनम् ।
पप्रच्छुर्नारदं हर्षादुल्लासोत्फुल्लमानसाः ।।५९२।।

इस प्रकार जब देवर्षि नारद ने मनियों के सामने विवाह का पूरा वर्णन कर दिया तो सब ऋषि मुनि बहुत हर्षित होकर बड़ी उत्सुकता से नारद जी से पूछने लगे कि– ।।५९२।।

वध्वास्तस्या वरः कोऽसौ पुण्योपचयसुन्दरः ।
पुराजन्मजसत्कर्मफलार्जितयशोनिधिः ।।५९३।।

हे मुनिवर, उस दुल्हन का भाग्यवान वर कौन था ? उसने पहले जन्मों में कौन से पवित्र सत्कर्म किए थे कि उसे ऐसी अच्छी गुणवती पत्नी प्राप्त हुई ? ।।५९३।।

तस्य वंशावलिं देव विज्ञातुं बयमुत्सुकाः ।
यदि तुष्टोऽसि हे स्वामिन् वक्तुमस्मांस्त्वमर्हसि ।।५९४।।

हे भगवन ! हम उस दूल्हे के वंश के विषय में भी जानना चाहते हैं। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हे स्वामी, हमें विस्तार से सुनायें । ५९४।।

संप्रश्नं नारदस्तेषां श्रुत्वा हृष्टो मनीषिणाम् ।
प्रत्यवादीत् कथामेतां मुनींस्तत्र समागतान् ।।५९५।।

उन मुनियों का यह प्रश्न सुनकर नारद जी बड़े प्रसन्न हुए । वहां आए हुए सब ऋषि महात्माओं को एक रोचक कथा सुनाने लगे ।।५९५।।

चन्द्रभागानदीपार्श्वे गुर्जरै राजवंशजैः ।
नगरं निर्मितं रम्यं गुजरात इति स्मृतम् ।।५९६।।

चन्द्रभागा (चिनाव) नदी के पास ही एक सुन्दर नगर गुजरात नाम से प्रसिद्ध है जिसे गूजर राजाओं ने स्थापित किया था ।।५९६।।

तदुपान्ते पुरी त्वेका धनाढ्यजनसंकुला ।
जलालपुरजट्टाञ्चेत्याख्यया भुवि विश्रुता ।।५९७।।

उसके पास ही एक और नगरी है, जिसको जलालपुर जट्टां कहते हैं। वहां के लोग बड़े धनी हैं ।।५९७।।

तत्रासन्भूसुरा:केचिच्चारित्र्योत्कर्षगुम्फिता: ।
वेदज्ञानक्रियाकाण्डपण्डिता गुणमण्डिता: ।।५९८।।

उस नगरी में कुछ ब्राह्मण लोग भी रहते थे जो गुणी, वेदज्ञान के पण्डित और चरित्रवान् थे ।।५९८।।

वत्सगोत्रसमुत्पन्ना मिश्रा इत्याख्यया स्मृता: ।
ज्ञात्या च वसुदेवास्ते तेजोभासुरभूसुरा: ।।५९९।।

उन ब्राह्मणों का गोत्र वत्स था, पर वे मिश्र कहलाते थे। उनकी जाति वसुदेव थी, और वे ब्राह्मण बड़े तेजस्वी थे ।।५९९।।

तेष्वेको विप्रमूर्धन्यो निबाहूराम इत्यसौ ।
बभूवाद्भुतयशोवारिधौतसर्वदिशामुख: ।।६००।।

उन सबमें से एक ब्राह्मण महोदय सबसे श्रेष्ठ थे, जिनका नाम निबाहूराम था। उनकी विद्वत्ता की ख्याति, चारों दिशाओं में फैली हुई थी ।।६००।।

विख्याता त्रिषु लोकेषु तत्सम्बन्धिजनश्रुति: ।
जिव्हाग्रे वर्त्तते तस्य जपसिद्धा सरस्वती ।।६०१।।

उनके सम्बन्ध में लोग कहा करते थे कि इन पंडित महोदय ने सरस्वती देवी को जपद्वारा अपने वश में कर रखा है और सरस्वती अब इनकी जिह्वा पर ही निवास करती रहती है ।।६०१।।

विद्याधरस्तु तत्पुत्रो विद्याशीलसमन्वित: ।
कविराजो भिषक्सम्राड् विद्वान्वेदविचक्षण: ६०२।।

इन निबाहूराम जी के पुत्र विद्याधर जी हुए, जो सब विद्याओं में निपुण थे, जिन्हें वैद्य-हकीमों का सम्राट् कहा जाता था और जो आयुर्वेद के महान् पंडित होने से कविराज कहलाते थे ।।६०२।।

रामनाथस्तु तत्सूनुः पण्डितप्रवरोवरः ।
गायन्ति यद्यशो लोका ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ।।६०३।।

उनके पुत्र रामनाथ जी हुए । वह भी बड़े विद्वान थे । उनका यश तो लोग गांव - गांव और शहर - शहर में गाते फिरते थे ।।६०३।।

ब्रजवासीति तत्पुत्ररत्नं भाग्यादजायत ।
राकायामतिशुभ्रायां भवेच्चन्द्रोदयोयथा ।।६०४।।

उनके पुत्र रत्न ब्रजवासी जी हुए जैसे रात को आकाश में चन्द्रमा का उदय हो ।।६०४।।

मेधावी बालको नित्यं प्रज्ञासम्पद्विभूषितान् ।
साश्चर्यानकरोद्बुद्धिचातुर्येण विपश्चितः ।।६०५।।

नवजात बालक ब्रजवासी बचपन से ही अपनी बुद्धि की चतुरता तथा समझबूझ भरी बातों से बड़े-बड़े विद्वान् तथा सयाने लोगों को भी आश्चर्य में डाल देता था ।।६०५।।

गत्वा पञ्चाम्बुदेशात्स रम्यां काशीपुरीं पुरा ।
वेदवेदाङ्गवैदुष्यं प्राप्तवानचिरेण वै ।।६०६।।

जब यह बालक कुछ बड़ा हुआ तो विद्याध्ययन करने पञ्जाब देश छोड़ काशीपुरी में चला गया । वहां जा कर उसने वेद, वेदाङ्ग तथा दूसरे शास्त्रों की विद्या प्राप्त कर ली ।।६०६।।

सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः ।
कृत्स्नविद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि ॥६०७॥

काशीपुरी में जा कर ब्रजवासी जी ने अनेकों शास्त्र पढ़े, कई भाषाएं सीखीं । उन सभी भाषाओं में कविताएं लिखीं, जिससे उन की प्रसिद्ध देश देशान्तरों में होने लगी ।६०७॥

प्रत्यागत्य गृहं सर्ववेदविद्याविशारदः ।
गुजरातनगर्यां स निर्ममे वेदमन्दिरम् ॥६०८॥

फिर सब विद्याओं में पारंगत हो कर वह वापिस अपने घर आ गए, और वहां उन्होंने गुजरात नगरी में वेदमन्दिर की स्थापना की ॥६०८॥

नाना देशागताः छात्राः सुधिया तेन सत्वरम् ।
वेदविद्योज्ज्वलाः सर्वे कृता वैदुष्यमण्डिताः ॥६०९॥

उस वेद मन्दिर की प्रसिद्धि सुनकर, वहां विद्याप्राप्त करने के लिए विद्यार्थी लोग नाना देश तथा प्रान्तों से आने लगे, और वहां आकर कुछ ही दिनों में वेदों के पण्डित बनने लगे ॥६०९॥

तस्य विद्यार्थिवृन्दैश्च नानाविद्याविशारदैः ।
प्रसारिता हि तत्कीर्त्तिर्देशदेशान्तरेष्वपि ॥६१०॥

पढ़ लिखकर जब विद्यार्थी वहां से विद्याविशारद हो कर जाते थे, तो पंडित ब्रजवासी जी की कीर्ति देशशान्तरों में फैलने गली ॥६१०॥

तद्वैदुष्ययशःपुञ्जशीकरासारवाहिनीम् ।
दिगन्तव्यापिनीं कीर्त्तिं श्रुत्वा वै विदुषां मुखात् ॥६११॥

उनकी इस प्रकार चारों दिशाओं में फैलती हुई प्रसिद्धि को विद्वानों के मुख से जब बार-बार सुना ।।६११।।

तत्पाण्डित्यप्रभापूरप्रभावितमनाः प्रभुः ।
रणवीरमहाराजो जम्मूकाश्मीरभूपतिः ।।६१२।।

तब जम्मू-कश्मीरदेश के विद्याप्रेमी महाराजा श्रीरणवीसिंह जी पर बड़ा प्रभाव पड़ा, तब उन्होंने ।।६१२।।

पञ्चाम्बुदेशविद्वद्भिः पूजितं सुसमादृतम् ।
गुजरातप्रदेशात्तं समाह्वयत् स सादरम् ।।६१३।।

अपना दूत भेज कर पंजाब प्रदेश से उन पण्डित जी को जम्मू बला लिया । यहां के सब पंडितों ने भी उनकी विद्वत्ता देखकर उनका बड़ा आदर किया ।।६१३।।

राज्ञा सम्मानितं वीक्ष्य तं च धर्मधुरंधरम् ।
महाराजमहामात्यः स्वीयं चक्रे पुरोहितम् ।।६१४।।

जब महाराजा के मुख्यमन्त्री ने देखा कि महाराजा तथा अन्य सभी लोग इस विद्वान का इतना आदर करते हैं तो उसने उनको अपना मुख्यपुरोहित बना लिया ।।६१४।।

रणवीरे गते स्वर्गं राजराजशिरोमणौ ।
प्रतापसिंह इत्याख्यः कश्मीराधिपतिर्बभौ ।।६१५।।

जब महाराज रणवीरसिंह जी का स्वर्गवास हो गया तो उनके सुपुत्र श्री प्रतापसिंह राजसिंहासन पर बैठे ।।६१५।।

तस्यानुजो महातेजा रामसिंहः सुधीर्बली ।
गुणान्वेषी गुणग्राही वेदविद्यानुरागवान् ।।६१६।।

महाराजा श्री प्रतापसिंह का छोटा भाई राजा रामसिंह भी बड़ा तेजस्वी था। गुणियों का बड़ा आदर-सत्कार करता था और वेदविद्या से तो उसको बड़ा ही प्रेम था ।।६१६।।

श्रुत्वा प्रवचनं तस्य सभायां शास्त्रवादिनाम् ।
पदं राजगुरोस्तस्मै रामसिंहः समर्पयत् ।।६१७।।

एक दिन शास्त्रज्ञों की सभा में राजा रामसिंह ने पंडित ब्रजवासी नाथ जी का प्रवचन / सुना, तो उनकी विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि राजा साहिब ने पं० ब्रजवासीनाथ जी को अपना राजगुरु बना लिया ।।६१७।।

राजापूज्यगुरुश्चाथ महामात्यपुरोहितः ।
विद्यासम्पद्वतां मान्यो ब्रजवासी बभौ भुवि ।।६१८।।

अब पंडित ब्रजवासीनाथ जी राजा रामसिंह जी के पूज्ज गुरु भी वनगए और मुख्यमंत्री के पुरोहित भी। विद्वान् पंडित लोग भी उन की पूजा करते थे ।।६१८।।

सोऽज्ञासीद् यावतोर्विद्यास्तासाम् नामापि निश्चितम् ।
वक्तुं नास्त्येव सामर्थ्यं नूनं वाचस्पतेरपि ।।६१९।।

ब्रजवासो जी जितनी विद्याओं में पारंगत थे उन सब विद्याओं के नाम देबताओं के गुरु बृहस्पति भी नहीं जानते थे ।।६१९।।

अभूदिन्द्रः स ऐश्वर्ये प्रतापे ज्वलनोपमः ।
कुबेरेण समो वित्ते वैदुष्ये च बृहस्पतिः ।।६२०।।

ऐश्बर्य में पंडित ब्रजवासीनाथ जी इन्द्रदेवता के समान थे। उनका प्रताप अग्नि देवता के समान था। उनके पास धन

कुवेर देवता के बराबर था और उनकी विद्या देवताओं के गुरु बृहस्पति जितनी थी ॥६२०॥

दिग्गजा वीजयन्त्येवं कर्णतालसमीरणैः ।
तद्वैदुष्यप्रतापाग्निप्रतप्तांगा दिगंगनाः ॥६२१॥

उनकी कीर्ति की अग्नि इतनी प्रचंड होकर देशों दिशाओं में फैल गई कि दिशाओं के जलते हुए अगो को शीतल करने के लिए दिग्गजों को अपने कानों से पंखे झुलाने पड़ते थे ॥६२१॥

अपूर्वस्तत्प्रतापग्निस्तद्वृद्धिद्वेषिणां न्यधात् ।
नारीनेत्रेषु नीरोर्मीन्मन्दिरेषु तृणाङ्कुरान् ॥६२२॥

उनके प्रताप की अग्नि अपूर्व थी । जो लोग उन से द्वेष करते थे उन की स्त्रियों की आंखों में आंसुओं की धारा वहा देती थी और द्वेषियों के घरों में तृणघास आदि उगाती थी ॥६२२॥

नैकाः सत्कृतयस्तस्य विदुषो विस्मयावहाः ।
वर्णयन्ति वयोवृद्धा गोष्ठीष्वद्यापि धीमताम् ॥६२३॥

वह इतने नीतिवान् थे कि वड़े बूढे लोग आजकल भी विद्वानों की सभाओं में उनका वर्णन अवश्य करते हैं ॥६२३॥

प्राप्ते काले सुधीः कृष्णबलरामसमौ वरौ ।
पुत्रौद्वावध्यगात् सौम्यौ सूर्यचन्द्रसमप्रभौ ॥६२४॥

समय आने पर पंडित ब्रजवासीनाथ जी के दो पुत्र हुए जो श्रीकृष्ण तथा श्री वलदेव के समान थे, या सूर्य तथा चान्द के तुल्य थे ॥६२४॥

दीनानाथो वरीयांश्चोदयचन्द्रोऽनुजस्तथा ।
वर्धेते पादपौ स्नेहपालितौ तौ यथाऽङ्गणे ॥६२५॥

बड़े भाई का नाम था दीनानाथ, और छोटे का उदयचन्द्र । दोनों की पालना घर में बड़े स्नेह से होती थी, जैसे आंगन में लगाए हुए वृक्षों की होती है ॥६२५॥

दीनानाथः सुतो ज्यायान् विद्वद्वर्यशिरोमणिः ।
शरण्यो दीनदीनानामनाथानां दयानिधिः ॥६२६॥

बड़े भाई दीनानाथ जी भी, अपने पिता के समान, विद्वानों में शिरोमणि थे और दया के समुद्र थे । दीनों तथा अनाथों को तत्काल शरण देते थे ॥६२६॥

बाल्यकालात् समारभ्य दीनानां परिपालनात् ।
नामान्वर्थं पिता तस्य दीनानाथ इति व्यधात् ॥६२७॥

क्योंकि अपने वचपन से ही वह दीन तथा अनाथों का पालन करते थे, इसलिए उनके पिता जी ने उनका नाम ही दीनानाथ रख दिया, जो यथार्थ नाम था ॥६२७॥

क्षुधितव्याधितानाथदीनानामार्तिवारणात् ।
दीनानाथस्य सम्प्राप भाग्यलक्ष्मीः कृतार्थताम् ॥६२८॥

भूखे और बीमार दीनों की रक्षा करने, दुःखी लोगों के संतापों का बिनाश करने के कारण दीनानाथ जी की भाग्य लक्ष्मी कृतार्थता को प्राप्त हो गई ॥६२८॥

सौजन्ये स सुधासिन्धुः स्थैर्ये साक्षाद्धिमालयः ।
दुःखार्तजनसन्तापच्छेदचन्दनपादपः ॥६२९॥

सौजन्य के वह समुद्र थे । स्थिरता में हिमालय पर्वत के समान थे और दुःखी लोगों के सन्तापों को मिटाने के लिए वह चन्दन के वृक्ष के समान थे ॥६२९॥

वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो यशश्चन्द्रोदयोज्ज्वलः ।
मीमांसान्याययोगादिशास्त्रज्ञानविचक्षणः ॥६३०॥

वह वेद-वेदाङ्ग के सब तत्वों को जानते थे । न्याय, मीमांसा योग आदि शस्त्रों के ज्ञानी थे । उनके यशरूपी चन्द्रमा का प्रकाश चारों ओर फैल रहा था ॥६३०॥

ययुर्मत्सरिणो दैन्यं विद्वत्वं वीक्ष्य तस्य वै ।
प्रदीप्तं रविरश्म्योघं दिवसे तारका इव ॥६३१॥

उनकी विद्वता को देख कर ईर्ष्यालु लोगों को इतनी दीनता का मुंह देखना पड़ता था, जितनी दीनता का सितारों को देखना पड़ता है जब आकाश में सूर्य का प्रकाश प्रदीप्त होता है ॥६३१॥

दीनानां वाचमाकर्ण्याकार्षीत् तृष्णानिवारणम् ।
चातकानां तृषार्तानां पयोवाह इव प्रभुः ॥६३२॥

पंडित दीनानाथ जी दीन लोगों की आवाज सुनते ही उनकी तृष्णा का उसी प्रकार निवारण कर देते थे, जिस तरह दीन चातक-पक्षियों की आवाज सुनकर बादल पानी बरसा कर उन पक्षियों की प्यास मिटा देता है ॥६३२॥

तत्पुत्रश्चन्द्रनाथोऽस्ति काव्यमार्गानुवर्तिनाम् ।
विदुषां सूरिणां नित्यं चरणाम्बुजषट्पदः ॥६३३॥

पंडित दीनानाथ जी का एक ही पुत्र हुआ । उसका नाम है चन्द्रनाथ। वह विद्वानों और कवियों के चरणों के आसपास

इस तरह घूमता रहता रहता है, जैसे कमल फूलों के गिर्द भंवरा ॥६३३॥

तस्य पत्नी महाभागा वीरदेवी वरानना ।
गुणानुवर्णनाद् यस्या जातोऽसौ सूरिसेवकः ॥६३४॥

उसी की पत्नी वीरदेवी थी, और अपनी पत्नी के गुणों का वर्णन करते-करते वह भी कवियों का सेवक बन गया ॥६३४॥

पितृव्यश्चन्द्रनाथस्य जम्मूव्योमकलानिधिः ।
उदयचन्द्र इति ख्यातश्चन्द्रोदयसमद्युतिः ॥६३५॥

चन्द्रनाथ के चाचा का नाम था उद्दयचन्द्र जी । उनकी शोभा उदय होते हुए चन्द्रमा के समान थी ॥६३५॥

अखण्डमण्डलश्चेन्दुरविज्ञातकलाक्षयः ।
हाकिमालह् स विख्यातो जनैः
सम्मानितो भृशम् ॥६३६

जम्मू के आकाश में वह अखण्डमंडल उस चन्द्रमा के समान थे जिसकी कलाएं सदा पूरी रहती हैं। जम्मू के सब लोग उन्हें "हाकिमालह्" कहते थे, और उनका बड़ा आदर करते थे ॥६३६॥

जनसाधारणस्यापि राज्ञश्चापि प्रियो महान् ।
भूपप्रतापसिंहस्य विश्वस्तः सचिवो ह्यभूत् ॥६३७॥

महाराजा को तो उदय चन्द्र जी बहुत प्यारे थे। जन-साधारण भी उनसे प्यार करते थे । महाराजा प्रतापसिंह ने उनको अपना विश्वासपात्र मंत्री बनाया हुआ था ॥६३७॥

श्रीमानुदयचन्द्रः स जम्मूप्रान्तप्रतिष्ठितः ।
गवर्नर इति ख्यातां पदवीमभृत प्रधीः ॥६३८॥

इस प्रकार उदयचन्द्र जी ने सारे जम्मू प्रांत में प्रतिष्ठित हो कर गवर्नर की पदवी प्राप्त कर ली ॥६३८॥

गवर्नभ्रांतृसंजातो वरोऽयमिति सत्कथाम् ।
काश्मीराणां महाराजाधिराजः श्रुतवानसौ ॥६३९॥

जब काश्मीर के महाराजाधिराज ने सुना कि मेरे गवर्नर के बड़े भाई के लड़के की शादी है ॥६३९॥

आदिशत्स सहर्षं वै रथशालाधिकारिणम् ।
बग्घीरथेषु यः कोऽपि रथश्रेष्ठस्तमानय ॥६४०॥

तो महाराज बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपनो रथशाला के अधिकारी (अफसर) को बुलाया और उसे हुकम दिया कि मेरे बग्घी खाने में जो बग्घी श्रेष्ठ है, उसको ले आओ ॥६४०॥

गत्वा पारं नदीसेतोर्नवोढां वरसंयुताम् ।
रथारूढां समानीय सत्वरं मां निवेदय ॥६४१॥

और तवी (नदी) के पुल के पार जाकर दूल्हा और दुल्हन को रथ में चढ़ा कर जम्मू में ले आओ और मुझे पता कर दो कि वर और वधू सकुशल घर पहुंच गए हैं ॥६४१॥

महाराजाधिराजेन्द्रप्रेषितः स रथो शुभः ।
चतुर्भिर्वाजिभिः श्वेतैरशोभत सुवर्णितैः ॥६४२॥

महाराज की भेजी हुई वह गाड़ी जिसके आगे सफेद रंग के चार घोड़े जुते हुए थे और जिसका रंग सुनहरी था बड़ी सुशोभित हो रही थी ॥६३२॥

अश्वैश्चतुर्भिराकृष्टे वरसार्धं स्थिता रथे ।
कृष्णेन नीयमाना सा रुक्मिणीव व्यभाद् वधूः ॥६४३॥

उस चार घोड़ों वाली गाड़ी में बैठी हुई बधू ऐसे लग रही थी जैसे श्री कृष्ण अपने साथ रुक्मिणी को ले जा रहें हैं ॥६४३॥

स्वर्णभूषणसंभारै रथेऽशोभत भामिनी ।
नानापुष्पभराक्रान्ता मृद्वी तरुलता यथा ॥६४४॥

सोने के आभूषणों के भार से झुकी हुई रथ में बैठी हुई दुलहन ऐसे लग रही थी जैसे फूलों के भार से झुकी हुई वृक्ष की कोमल लता हो ॥६४४॥

पुष्पमालाभिराकीर्णे पत्या सार्धं रथे स्थिता ।
रामेण सह सीतेव विमाने पुष्पकेऽत्यभात् ॥६४५॥

रथ भी चारों ओर से पुष्पों की माला से ढका हुआ था, और पति के साथ उसमें बैठी हुई वह ऐसे प्रतीत होती थी जैसे पुष्पक विमान में राम के साथ सीता बैठी हुई हो ॥६४५॥

वीणाभेरीस्वनैरुच्चैर्जनकोलाहलैस्तथा ।
हर्षनादैस्तदा तत्र शब्दाद्वैतमजायत ॥६४६॥

उस समय नाना प्रकार के वाजों का इतना शोर हो रहा था और लोगों का भी कोलाहल और हर्षनाद उसमें मिलकर इतनी आवाजें आ रहीं थीं कि दूसरा कोई शब्द सुनाई ही नही दे रहा था ॥६४६॥

नैकवाद्यसमुद्भूततूर्यनादोऽसकृच्छ्रुतेः ।
शंकेऽसौशेषनागोऽपि न्यमीलन्निजचक्षुषी ॥६४७॥

अनेक बाजों का इतना शोर उन समय मचा कि शेष नाग ने भी उस शोर से भयभीत हो कर अपनी आंखें बन्द कर लीं ॥६४७॥

तूर्योद्घोषणसंसिक्तैर्डिडिमैर्बहुसंख्यकैः ।
भेरीपटहवीणानां निनादैर्दुंदुभिस्वनैः ॥६४८॥

ढोल, नगारे, भेरी, शहनाई इत्यादि बाजों की ध्वनियों से मिलकर खूब शोर हुआ ॥६४८॥

वाजिनां हेषया नानावादनैर्द्विगुणीकृतः ।
तुमुलो हर्षशब्दोऽभूद् वधिरीकृतदिग्गजः ॥६४९॥

घोड़ों की हिनहिनाहट और उनमें खुशी के नारे मिल जाने से इतना शोर हो रहा था कि दिग्गज भी बहरे होते दिखाई देते थे ॥६४९॥

अथ शिल्पिकृताक्रीडा रागैर्लोकमरञ्जयत् ।
अङ्गारक्षारचूर्णादिगन्धकौषधयुक्तिभिः ॥६५०॥

उस समय आतिशबाजी के खेल भी दिखाए जा रहे थे, जिसे देख कर लोग बड़े प्रसन्न हो रहे थे ॥६५०॥

निर्गतं नडदण्डाद्धि ज्वालापिण्डं नभोऽङ्गणे ।
उद्दण्डं सर्वभूतानां चण्डरश्मिभ्रमं व्यधात् ॥६५१॥

आसमान में घूम-घूम कर गोल चक्र लगाते हुए अग्नि के पिण्डों को देख कर सूर्य का भ्रम पैदा होता था ॥६५१॥

सर्पाकारानलज्वाला निर्गता नालिकान्तरात् ।
अकरोद्दर्शकानाञ्च त्रासाश्चर्यरसोदयम् ६५२॥

नालदण्ड में से निकलती हुई आतिशबाजी से चारों ओर फैलती हुई अग्नि सांपों जैसी सरसराती हुई हवा में फैलती थी, जिसे देखकर लोगों को आश्चर्यमिश्रित आनन्द का अनुभव होता था ॥६५२॥

तत्र पात्रीकरस्थाश्च ज्वलन्त्योषधनालिकाः ।
द्युलोकोन्मुक्तसद्वर्णस्वर्णपुष्पश्रियं दधुः ॥६५३॥

हाथ से चलाई हुई जलती हुई आतिशबाजो ऐसे प्रतीत होतो थी जैसे आकाश से स्वर्ण पुष्प झड़ रहे हों ॥६५३॥

गतागतानि कुर्वन्त्यो दीप्ता उल्का इवोल्वणः ।
प्रेक्षकाणां प्रिया दृष्टीनहरन्विस्मयावहाः ॥६५४॥

पुच्छलतारे के समान आगे-पीछे आती जाती अग्नि को देख लोग आश्चर्यान्वित हो रहे थे ॥६५४॥

नालिकादुत्थिता व्योम्निज्वालागोलकपंक्तयः ।
स्वर्णराजतरोचिष्का जीवशुक्रोपमां व्यधुः ॥६५५॥

आकाश में अग्नि के गोलों के जलते हुए चक्र इस तरह प्रतीत होते थे जैसे वहां अनेकों वृहस्पति तथा शुक्र सितारे उदय हो रहे हों ॥६५५॥

महाराजरथारूढां फुल्लराजीवलोचनाम् ।
गता लज्जास्पदं वीक्ष्य रूपेऽप्यप्रतिमा रतिः ॥६५६॥

महाराजा के रथ में बैठ कर जब वहू अपने ससुराल में

पहुंची तो उसकी खिले हुए कमल के समान आंखों को देख कर काम देव की पत्नी रति को भी लज्जा आ रही थी ॥६५६॥

अवगुण्ठनसंच्छन्नं चन्द्रमुख्या व्यभान्मुखम् ।
मेघैराच्छादितं पूर्णचन्द्रबिम्बं यथाम्बरे ॥६५७॥

उस चन्द्रमुखी का चेहरा घूंघट से ढका होने पर भी मेघों से ढके चांद के समान चमक रहा था ॥६५७॥

यौवनोदयसम्भारलोलायतविलोचना ।
अराजत गृहे पत्युर्व्योम्नि सौदामिनीव सा ॥६५८॥

आकाश में जैसे बिजली कौंधती है उसी प्रकार उस चंचल-नयनी के शरीर से यौवन की तीव्र ज्योति निकल कर सारे घर में प्रकाश फैला रही थी ॥६५८॥

प्रातनुततरां कान्ति मुखस्याभा च सुभ्रुवः ।
स्वसौन्दर्यपयःपूरैः प्लावयन्तीव दिङ्मुखान् ॥६५९॥

कमान की तरह खिची दुल्हन की भवें उसके चेहरे पर चमक रही थीं । लावण्य की अनन्त धारा सी उसके चेहरे से निकल कर चारों दिशाओं में फैलती दृष्टिगोचर होती थी ॥६५९॥

पत्युर्गेहे व्यराजत्सा रूपदीप्तिप्रभोज्ज्वला ।
रम्या रत्नमयी मूर्तिर्यथा सौन्दर्यमन्दिरे ॥६६०॥

अनुपम रूपवती दुल्हन पति के घर में इस प्रकार विराजमान थी जैसे सुन्दरता के मंदिर में किसी देवी की रत्नों से जड़ी सुन्दर मूर्त्ति हो ॥६६०॥

स्त्रियस्तत्पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शनोत्सुका: ।
रूपं वीक्ष्य प्रशंसन्ति संस्तुवन्ति परस्परम् ॥६६१॥

नगरी की स्त्रियां जब उसके अनुपम रूप की प्रशंसा सुनती थी तो उसको अपनी आंखों से देखने की उतावली में स्वयं आकर उस चन्द्रमुखी के चेहरे को विना पलक झुकाये देखती ही रह जाती थीं । हैरान हो कर कहती थीं, इतना मोहक रंगरूप हमने पहले कहीं नहीं देखा । उसके सौन्दर्य की प्रशंसा एक दूसरी के साथ कर के थकती ही नहीं थीं ॥६६१॥

प्रतिक्षणं नवीनाया हृदयग्राहिण: परम् ।
अयुर्नूनं नवीनत्वं गात्रचालनविभ्रमा: ॥६६२॥

दुल्हन जब उठती बैठती थी, हिलती जुलती थी, हंसती बोलती थी, तो हर क्षण उसका प्रत्येक अंग, चाहे आप किसी कोण से देखो, एक अद्वितीय नवीनता धारण कर लेता था जो चित्त को मोहक लगती थी ॥६६२॥

भूरिलावण्यधन्याया अशोभततराम् परम् ।
कुन्देन्दुकेतकीहारहरहाससितं स्मितम् ॥६६३॥

जब दुल्हन हंसती थी तो लगता था कि कुन्द पुष्प अथवा केतकी के हारों से फूल झर रहे हैं अथवा चान्द की चमक कौंध रही है, अथवा भगवान शिव के अट्टहास की दीप्ति का श्वेत प्रकाश फैल रहा है ॥६६३॥

मधुर: पिकवाण्या: स सरसो भारतीध्वनि: ।
अज्ञायि कैर्न घर्मान्ते मरौ श्रीखण्डलेपनम् ॥६६४॥

दुल्हन जब बोलती थी तो लगता था कि कोयल कूक रही है। उसकी रसीली बोली संतप्त चित्त को इतना शीतल कर देती थी जितना गर्मी से झुलस रहे पुरुष के शरीर को शीतल चन्दन का लेप कर देता है ।।६६४।।

कटाक्षवीक्षणं तस्याश्चञ्चलं चापि निश्चलम् ।
ऋजु क्षणे क्षणे तिर्यक् प्रतिक्षणविलक्षणम् ।।६६५।।

उस कमलनयनी के नेत्रों से निकले कटाक्ष दोहरी मार करते थे, कभी सीधी, कभी तिरछी। उसके नेत्रों में कभी तो अद्भुत चञ्चलता दिखाई देती थी और कभी स्थिरता। उनकी गति क्षण क्षण में विलक्षण हो जाती थी ।।६६५।।

तस्याविलासवलितश्चलितापाङ्गविभ्रमः ।
अकरोत् कौतुकोद्ग्रीवान्बन्धूंश्चित्रार्पितानिव ।।६६७।।

उस नव-वधू को जब अपने चञ्चल नयन घुमा कर इधर से उधर देखना पड़ता था तो सब यही समझते थे कि उसके नेत्रों से तीखे कटाक्ष चल रहे हैं। उनका तीखापन देखने को लालायित ससुराल के लोग उसके चेहरे को बार बार देख कर भी तृप्त नही होते थे। देखते देखते वहीं पर मन्त्रमुग्ध होकर खड़े के खड़े रह जाते थे, जैसे चित्रकार ने उन्हें किसी चित्र में खींच दिया हो ।।६६७।।

ताम्राभेनमुखेनास्या दत्तनेत्राञ्जनेन च ।
सबालातपभृङ्गाङ्कस्वर्णपङ्केरुहायितम् ।।६६८।।

उसके गोरे गोरे गुलाबो मुखड़े तथा चंचल कजरारे नयनों को देख कर भ्रम हो जाता था कि दोपहर की धूप में किसी सुनहरी कमल पर काले भंवरे तो मंडरा नहीं रहे ? ।।६६८।।

श्वश्रूश्वसुरयोर्नित्यं स्निग्धनिष्कामसेवया ।
अनिशं सा व्यधाच्चित्तामोदं सौजन्यसुन्दरी ॥६६९॥

दुल्हन ने ससुराल में आकर अपनी सास और ससुर की प्रेम तथा भक्ति से दिन रात इतनी सेवा की कि कुछ ही दिनों में उन दोनों के मन को अपने वश में कर लिया ॥६६९॥

अन्येषामपि बन्धूनां साऽभवच्चित्तमोहिनी ।
सप्रश्रयोपचारेण विनीताचरणेन च ॥६७०॥

बधू ने अपने विनय पूर्ण आचरण से, तथा प्रेम पूर्वक व्यवहार से, वर के सम्बन्धियों के भी चित्त मोह लिए ॥६७०॥

स्त्रीरत्नं तद्विधं प्राप्य संस्फुरत्स्नेहभासुरम् ।
तत्पतिर्मन्यते धन्यं स्वात्मानं भाग्यशालिनम् ॥६७१॥

उसका पति भी उसके स्नेहस्निग्ध व्यवहार को देखकर अपने आप को धन्य और भाग्यशाली मानता था कि उसे ऐसा स्त्रीरत्न प्राप्त हो गया है ॥६७१॥

तदाचरणवैशद्योत्कर्षसंमुग्धमानसाः ।
प्रतिवासिस्त्रियः सर्वाः प्रशंसंस्तां मुहुर्मुहुः ॥६७२॥

उसके आचरण की पवित्रता को देख कर उसके घर के आस पास रहने वाली पड़ोसिनें भी उसकी बड़ी प्रशंसा करती थीं ॥६७२॥

चत्वरे चत्वरे लोकैः प्रत्यङ्गणं गृहे गृहे ।
तद्रूपशीलचारित्र्योत्कर्षचर्चा व्यधीयत ॥६७३॥

सारे शहर में आप जिधर भी जाओ, चारों ओर उसी के रूप शील तथा चारित्र्य की चर्चा होती रहती थी। हर घर में हर आंगन में और हर गली में ।।६७३।।

जम्मूपुरी ह्यभूद्धन्या धन्या वत्सकुलोद्भवाः ।
वासुदेवकुलं धन्यं सम्प्राप्यैतादृशीं वधूम् ।।६७४।।

वत्सकुल तथा वासुदेवजाति धन्य हो गयी और साथ ही सारी जम्मूनगरी भी धन्य हो गई जब वैसी बधू आ गई ।।६७४।।

महोत्सवाद्यसौधेषु देवतायतनेषु च ।
जनाकीर्णप्रदेशेषु पुण्यतीर्थस्थलेषु वा ।।६७५।।

चाहे आप किसी महोत्सव में जाएं, चाहे मन्दिरों में चाहे उन स्थानों पर, जहां बहुत से लोगों का जमघट होता है, चाहे, तीर्थ स्थानों में जाएं ।।६७५।

रूपोत्कर्षश्रिया तन्वी व्यभादेकाकिनीव सा ।
नरनारीसमूहेन वृताऽपि दयितालये ।।६७७।।

चाहे आप किसी जगह भी जाएं, स्त्री-पुरुषों की भारी भीड़ में वह, अपने लावण्य के कारण, दूसरों से अलग खड़ी दिखाई देती थी, जैसे भीड़ में भी अकेली हो ।।६७७।।

कल्याणीमेकदा वीक्ष्य गृहकार्येषु संरताम् ।
प्रभातसमये प्राह वनिता प्रातिवेशिकी ।।६७८।।

एक बार, सवेरे, सवेरे, उसकी किसी पड़ोसन ने उसे घर के काम-काजों में व्यस्त देख कर कहा ।।६७८।।

न त्वं देवालयान्यासि न त्वं यासि शिवालयम् ।
प्रातरेव पतिं यत्नात् प्रेम्णा भोजयसि प्रभुम् ।।६७९।।

बहन, तू न तो किसी मन्दिर में जाती है, और न किसी शिवालय में। यह क्या बात हुई कि सवेरे सवेरे तू अपने पति तथा बच्चों के खाना बनाने में लग जाती है? ॥६७९॥

पश्य मां पुण्यलाभाय सततं क्षुत्पिपासिता।

अनुज्झितक्रमं यामि देवतायतनं प्रगे ॥६८१॥

मुझे देखो, कि मैं कितने पुण्य का काम करती हूं! मैं स्वयं चाहे भूख प्यास से व्याकुल भी हो जाऊं, पर पहले हर रोज प्रभात के समय मन्दिर में जाती हूं। यह मेरा नित्य का नियम है, और यह नियम मेंने कभी नहीं तोड़ा, चाहे कुछ भी हो जावे ॥६८१॥

साधुसेवापरा कृष्णशिवपूजारायणा।

नित्यं शास्त्रकथासक्ता मन्त्रजापपरा सदा ॥६८२॥

मैं नित्य साधुओं की सेवा करती हूं। भगवान कृष्ण शिव आदि देवताओं की पूजा करती हूं। शास्त्रों की कथाएं सुनने भी जाती हूं। मन्त्र जाप आदि सब क्रियाएं नियम से करती हूं ॥६८२॥

शिवादिदेवतापूजां विधाय च यथाविधि।

पश्चात् पुत्रान्पतिं चापि भोजयामीति मे क्रमः ॥६८४॥

पहले तो मैं मन्दिर में जा कर शिव आदि देवताओं की यथाविधि पूजा करती हूं। पीछे अपने घर आकर पति और बच्चों को भोजन कराती हूं, मेरा यही नित्य का क्रम है ॥६८४॥

वदन्तीं स्वसखीमेवं तत्क्षणं व्याहरत्सती।

सत्यमेतद् वदामि त्वां वयस्ये मे प्रिये सखि ॥६८५॥

अपनी पड़ोसिन की बात सुनकर उसने कहा कि "बहन तुम तो मेरी प्यारी सखी हो, पर मैं तुझे एक सच्ची बात बताती हूं ॥६८५॥

सेवते या स्वभर्तारं निष्कामपरिचर्यया ।
देवपूजाफलं साऽऽप्त्वास्वर्गलोके सहीयते ॥६८६॥

जो पत्नी अपने पति की निष्काम सेवा करती है वह देवताओं की पूजा का फल प्राप्त कर लेती है, और उसे स्वर्ग में भी सम्मान प्राप्त होता है ॥६८६॥

याऽर्चयेन्निजभर्त्तारं देवात्मानं पतिव्रता ।
देवान् सैवार्चति श्रेष्ठा यतो देवमयःपतिः ॥६८७॥

जो अपने पति को देवता समझ कर उस की पूजा करती है, वही पूजा सच्ची "पूजा" है, क्योंकि पति के शरीर में ही सब देवताओं का निवास है ॥६८७॥

पतिभक्तिपरा नार्यः पति शुश्रुषयाऽनिशम् ।
देवपूजाफलं लोके लभन्ते नात्र संशयः ॥६८८॥

यदि स्त्री भक्ति पूर्वक पति की सेवा करती है, तो वह देवताओं की पूजा का फल प्राप्त करती है । यह बिल्कुल सच बात है । इसमें जरा भी संशय नहीं ॥६८८॥

पतिसन्दर्शनं प्राप्य नेच्छन्तीश्वरदर्शनम् ।
ता एव भाग्यशालिन्यो धन्याः
सन्ति कुलाङ्गनाः ॥६८९॥

जो स्त्रियें पति का दर्शन प्राप्त करके फिर किसी दूसरे देवता के दर्शन करने की इच्छा नहीं रखतीं, वे ही स्त्रियां वास्तव

में सौभाग्य शालिनी होती हैं। केवल वे ही धन्य होती हैं और वही स्त्रियां कुलांगनाएं कहलाती हैं ।।६८९।।

मन्येऽहं स्वपतिं देवं शिवं विष्णुं प्रजापतिम् ।
पश्यन्ती पतिमीक्षेऽहं देवातानां त्रयीं गृहे ।।६९०।।

मैं तो अपने पति को ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव समझती हूं। जब मैं पतिका दर्शन करती हूं, तो मुझे अपने घर में ही तीनों देवताओं के दर्शनों का लाभ मिल जाता है ।।६९०।।

विना व्रतैर्विनायज्ञैर्विनाऽपि सुसमाधिभिः ।
समीपस्थोगृहे स्वीये सम्प्राप्तश्चेश्वरो मया ।।६९१।।

मुझे तो विना व्रत के, विना यज्ञ के, और विना समाधि के, अपने घर के अन्दर ही, पास ही बैठे हुए पति के रूप में ईश्वर की प्राप्ति हो जाती हैं ।।६९१।।

बुभुक्षितान्सुतांस्त्यक्त्वा पतिं चापि क्षुधातुरम् ।
यास्तु देवालयान्यान्ति ज्ञानवत्यो
न ताः स्त्रियः ।।६९२।।

जो स्त्रियां अपने बच्चों अथवा पति को भूखे रख कर, मन्दिरों में पूजा करने चली जाती हैं, मैं समझती हूं उनमें ज्ञान की कमी है ।।६९२।।

पद्मकोषस्थितो ब्रह्मा विष्णुर्वै क्षीरसागरे ।
शङ्करो भगवान्देवः कैलाशे वसति ध्रुवम् ।।६९३।।

तुमने जरूर सुना होगा कि ब्रह्मा देवता कमल फूल के कोष में कहीं रहते हैं, और विष्णु भगवान क्षीर सागर में मिलते हैं, और सुना है कि महादेव शंकर कैलाश पर्वत में कहीं बसते हैं ।।६९३।।

अन्ये देवगणाश्चापि दूरं स्वर्गे वसन्ति ते ।

सन्निधौ पतिरूपेण सर्वदेवसमुच्चयः ।।६९४।।

अन्य अनेकों देवता भी वहीं कहीं, बड़ी दूर स्वर्ग में रहते हैं परन्तु इन सब देवताओं का समुदाय तो पति के रूप में हर समय पत्नी के अंग संग रहता है, फिर वह अपने पति की सेवा क्यों न करे जो सब देवताओं की पूजा से श्रेष्ठ सेवा है ? ।।६९४।।

पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः ।

पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम् ।।६९५।।

प्रत्येक स्त्री केलिए सब से बड़ा व्रत अपने पति की सेवा ही है । सब से बड़ी तपस्या भी पति की सेवा हो है । वही उसका सर्वोत्तमधर्म कर्म है । और अपने पति की सेवा हर स्त्री केलिए देवताओं की सेवा से भी बढ़ कर है ।।६९५।।

व्रतं चाराधनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम् ।

पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम् ।।६९६।।

जो स्त्री पति की सेवा तो करती नहीं, पर अन्य धर्मकर्म तथा व्रत, तप, पूजा, दान, पुण्य, आदि नियम पूर्वक करती रहती है, उसके यह सब काम बिल्कुल व्यर्थ हैं ।।६९६।।

पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव सः ।

सर्वस्माच्च परः स्वामी न देवः स्वामिनः परः ।।६९७।।

स्त्री के लिए तो उसका पति ही देवता है, गुरु है, बन्धु है और उसकी परम गति है । पति से बढ़ कर उसके लिए और कोई देवता भी नहीं है ।।६९७।।

देवपूजां परित्यज्य या सती सेवते पतिम् ।

तस्या दर्शमुपस्पर्शं सर्वा वाञ्छन्ति देवताः ।।६९८।।

जो स्त्री देवताओं की पूजा की ओर अधिक ध्यान नहीं देती, पर नित्य अपने पति की सेवा में कमी नहीं आने देती, ऐसी पतिव्रता स्त्री के दर्शन करने के लिए तो सब देवता लालायित रहते हैं। ६९८।।

श्रुत्वेमां सूनृतां वाणीमाली तां व्याहरत् सतीम् ।

पण्डिता विदुषी त्वं वै शास्त्रज्ञानविचक्षणे ।।६९९।।

इस सच्ची वाणी को सुन कर उसकी पड़ोसिन सखी उसे कहने लगी बहिन, तू तो पण्डिता है और बड़े ज्ञान की बातें करती है ।।२९९।।

शास्त्रज्ञा नास्मि किन्त्वेताः वार्त्तास्ते धर्मसम्मताः ।

त्वया मे विवृतं चक्षुर्ज्ञानाञ्जनशलाकया ।।७००।।

तुम्हारी बातों में शास्त्रों का ज्ञान भरा है. पर मैं तो तुम्हारे जैसी पढ़ी लिखी नहीं हूं। आज तूने यह सब ज्ञान की बातें समझा कर मेरी आंखें खोल दी हैं ।।७००।।

अद्य प्रभृत्युपासिष्ये भर्त्तारं तनुजां स्तथा ।

मनसा कर्मणा वाचा स्वर्गलोकजिगीषया ।।७०१।।

आज से लेकर मैं भी अपने पति तथा बाल-बच्चों की मन, कर्म और वाणी से, तुम्हारी भांति ही सेवा करूंगी, जिससे मुझे भी स्वर्ग प्राप्त हो सके ।।७०१।।

समागतेऽतिवार्धक्ये दौर्बल्यव्याकुलीकृता ।
आदिष्टेव कृतान्तेन शय्यां नाऽत्यजदातुरा ।।७०२।।

जब वह बुढ़ापे के कारण बहुत दुर्बल हो गई, तो उसे बिस्तरे पर लेटना पड़ा, जैसे उसको यमराज ने आज्ञा दी हो कि अब तुझे शय्या पर ही लेटे रहना पड़ेगा ।।७०२।।

स्वयं स्थातुमथोत्थातुमशक्ता समभूद्द्रुतम् ।
अर्दिताऽसाध्यरोगेण श्येनेनेव कपोतिका ।।७०३।।

असाध्य रोग ने उसे कमजोर बना कर शय्या पर इस प्रकार लिटा दिया जैसे बाज पक्षी किसी कबूतरी को अपने पंजे के नीचे दबा लेता है ।।७०३।।

अम्दाबादस्थितं स्वीयं पुत्रं द्रष्टुं समुत्सुका ।
विद्युद्यन्त्रेण सन्देशं प्रेषयामास सत्वरम् ।।७०४।।

जब उसमें उठने-बैठने की शक्ति भी नहीं रही तो उसने तार द्वारा अपने पुत्र को बुला भेजा कि एक बार उसको मिल जाए। उसका सब से छोटा पुत्र उन दिनों अहमदाबाद में था ।।७०४।।

पुत्रं वीक्ष्य समीपस्थं हर्षोत्फुल्लविलोचना ।
सुस्पष्टभाषणेऽशक्ता सस्मितं साऽवलोकयत् ।।७०५।।

जब उस का पुत्र उसको आकर मिला, तो उसकी आंखें फूल की तरह खिल गईं। वह स्वयं बोल तो नहीं सकती थी, परन्तु पुत्र के चेहरे को देख कर कितनी ही देर तक मुस्कराती रही ।'७०५ ।

स्निग्धस्नेहनिधेस्तस्याः पत्युः सौख्यलताऽचिरम् ।
सञ्जाता नीरसप्राया तदस्वास्थ्यदवाग्निना ।।७०६।।

उसके प्रिय पति के सुख की कोमल लता सूख कर कांटा हो गई । पत्नी के रोग की दावाग्नि से वह सुखलता भी जल कर राख बनने लगी ॥७०६॥

व्याधिग्रस्तशरीराऽभूद्रोगशय्यापरिस्थिता ।
धूमेन सम्परीताङ्गी दीप्ता चाग्निशिखेव सा ॥७०७॥

जब रोग ने उसके शरीर के सब अंगों को घेर लिया तो बिस्तर पर लेटी वह ऐसे प्रतीत होती थी जैसे तीव्र अग्नि की शिखा को धुएं ने घेर रखा हो ॥७०७॥

चीनांशुकवृता कापि मूर्त्तिर्देवालयेऽपि वा ।
मध्वेंऽभसो दुराधर्षा दीप्ता ज्योती रवेरिव ॥७०८॥

या जैसे मन्दिर में स्थित देवी की मूर्ति को किसी ने बारीक रेशमी वस्त्र से ढक दिया हो, या जैसे सूर्य की चुंधया देने वाली ज्योति पानी में झिलमिल झिलमिल कर रही हो ॥७०८॥

विरराज तदाप्येवं रुजा धूसरितानना ।
नीहारेण वृता साभ्रा पूर्णचन्द्रप्रभा यथा ॥७०९॥

रोग से मैला होकर उसका सुन्दर मुख ऐसे दिखाई देता था जैसे चांद को कोहरा या बादल ढांप लेता है ॥७०९॥

वार्धक्येन विनष्टा न तन्मुखाभा मनागपि ।
वातेन रत्नदीपस्य वाध्यते किं विभोज्ज्वला ॥७१०॥

उसके सुन्दर चेहरे की कान्ति बुढ़ापे में भी पहले जैसी ही थी और चेहरे का आकर्षण जरा भी कम नही हुआ था । हीरे की भान्ति स्वतः प्रकाशित रत्नों से बने हुए दीपक की ज्योति को क्या

हवा कभी बुझा सकती है चाहे कितनी ही तेजी से क्यों न बहे ? ॥७१०॥

गतो मोहं पतिस्तस्याः क्षीणां वीक्ष्य प्रियां निजाम् ।
दीप्त्युज्झितपरिक्षीणदशां दीपशिखामिव ॥७११॥

अपनी भार्या को रोग के कारण क्षीण होती देखकर पति का मन बड़ा दुःखित होता था । पति अनुभव कर रहा था । कि उसकी पत्नी किसी दिये की शिखा के समान धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है और उस की ज्योति घट रही है ॥७११॥

अदृश्यन्त तदाश्वानो विक्रोशन्तः पुनः पुनः ।
शुचेव रुदिताक्रान्ता भाविविघ्नेक्षणादिव ॥७१२॥

गली के कुत्ते भी शोक के कारण रोते हुए दिखाई देते थे जैसे उनको किसी आने वाले भारी विघ्न का भय हो रहा हो ॥७१२॥

रोगावस्थास्थितिं ज्ञातुमागतैर्बान्धवैर्वृता ।
श्रुतमश्रुतवत्कर्त्तुं गतचिन्तेव साऽभवत् ॥७१३॥

उसके सम्बन्धी जब उसके स्वास्थ्य के विषय में उससे पूछने आते थे तो वह उनको कोई उत्तर नहीं देती थी, जैसे उसे अब अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं रही, इसलिए वह सम्बधियों की बातों को सुनकर अनसुनी कर देती थी ॥७१३॥

नाविन्दंस्तद्रुजो हेतुं लक्षणं वा चिकित्सकाः ।
तदवाच्यां शुचं हर्त्तुं बभूवानशनव्रता ॥७१४॥

जो वैद्य हकीम (डाक्टर) उसके रोग का कारण जानने को आते थे, उनको भी किसी निदान का पता न चलता था, इसलिए

वैद्यों की चिन्ता का अन्त करने के लिए उसने खाना-पीना तक भी छोड़ दिया ॥७१५॥

दर्शितास्वास्थ्यवाग्बन्धा त्यक्तपेयाद्युपक्रमा ।

पक्षेऽसिते गतज्योतिश्चन्द्रिकेवाभवत्सती ॥७१५॥

खाना-पीना छोड़ देने के बाद जब उसमें बोलने चालने की शक्ति नहीं रही तो वह धीरे-धीरे इस तरह क्षीण होती गयी जैसे कृष्ण पक्ष में चांद की कला घटती जाती है ॥७१५॥

सम्भाषणेऽसमर्था सा यमाकृष्टा विनिर्दयम् ।

वागुरापतिता दीना मृगीवावीक्ष्यतातुरा ॥७१६॥

यमराज उसको निर्दयता से घसीट ले जाना चाहता था, और वह बोलने में असमर्थ थी । इसलिए अपने पति को इस तरह देखती थी, जैसे कोई हरिणी जाल में फंस गई हो, और उसको शिकारी खींचकर ले जा रहा हो ॥७१६॥

क्रन्दन्तं स्वं पतिं वीक्ष्य लोचनैरश्रुपूरितैः ।

सदाहं तावकी नाथ निःशब्दं सा न्यवेदयत् ॥७१७॥

पत्नी को इस दशा में देख; जब उसके पति की आंखों में आंसू भर आए तो, पति को देख वह विना कोई शब्द बोले यह कहती प्रतीत होती थी कि प्रिय स्वामी मैं तो अब जा रही हूं, पर विश्वास रखो, मैं जन्म जन्मान्तर में भी सदा के लिए तुम्हारी ही हो कर रहूंगी ॥७१७॥

मृत्युतूष्णीकवाक्शक्त्या पलोन्मेषदृशा तया ।

कथयन्त्यैव यामीति सुस्पष्टं भाषितं यथा ॥७१८॥

जब उसकी मृत्यु का समय बिल्कुल निकट था तो उसके मुख की आवाज बंद हो गई । उस समय उसने एक मिण्ट के लिए आंखें खोलीं, और फिर बन्द कर लीं । जैसे वह स्पष्ट शब्दों में यह कह गई कि अब मेरी चिन्ता छोड़ दो, मैं तो सदा के लिए जा रहीं हूं ।।७१८।।

शौनिके यम आयाते बद्धदृष्टिर्मयि ध्रुवम् ।
सदैव हृत्प्रदेशान्तः साऽगोपयच्छविमम ।।७१९।।

जब यमराज कसाई की भान्ति उसके सिर पर आकर खड़ा हो गया, तो उसकी आंखे टकटकी लगाकर पति की ओर ही देख रही थीं, जैसे वह पति की तस्वीर को सदा के लिए अपने हृदय में खींचना चाहती हो ।।७१९।।

मम भाग्यविपर्यासात् सर्वायासाय विच्छविः ।
संध्यारविप्रभेवास्तं गन्तुं प्रावर्ततातुरा ।।७२०।।

पति के दुर्भाग्य के कारण, उसके सब प्रयत्नों को व्यर्थ कर के, वह इस तरह सभी को छोड़कर जाने के लिए आतुर दिखाई दे रही थी, जैसे सन्ध्या के समय सूर्य की ज्योति अस्त होने के लिये शीघ्रता कर रही हो ।।७२०।।

अश्रुपूरितनेत्रस्य तत्पत्युः परिवेदनम् ।
हृदयद्रावि निर्भत्स्य यमराजोऽहरत्सतीम् ।।७२१।।

उसके पति की आंखों में आंसूं भरे थे । वह शोक से रो रहा था । इस दृष्य को देख सब का हृदय तो द्रवित हो रहा था, पर यमराज पर पति के रोने धोने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह उस सतीतुल्य पत्नी के प्राणों को हर कर ले गया ।।७२१।।

अहरत्पद्मपत्राक्षीं यमो निष्करुणोऽहरत् ।
अहरच्चारुसर्वाङ्गीमहरन्मञ्जुभाषिणीम् ।।७२२।।

निर्दय यमराज के हृदय में करुणा का निशान तक नही मिला। वह उस सुन्दर, मीठी बोली बोलने वाली, कमलनयनी मेरी पत्नी को मुझ से छीन कर जबर्दस्ती ले गया ।।७२२।।

निरीहामिव पञ्चास्यो गां चरन्तीमकल्मषाम् ।
सुखं विहरतीं श्येनः कलबिंकवधूं यथा ।।
चरन्तीं शस्यखण्डेषु कुरंगीं वा मृगाशनः ।
अग्रादकस्मात्तां कान्तां मदीयां कालकेसरी ।।७२३।।

जैसे निर्दयी शेर घास चरती निर्दोष गाय को अपने मुंह में उठा कर ले जाता है, या जैसे स्वच्छन्द रूप से इधर उधर उड़ती हुई नन्ही निर्दोष चिड़िया को बाज पक्षी पञ्जों में दबोच लेता है, या जैसे हरी हरी घास चरती हिरणी को दहाड़ता हुआ सिंह उठा कर ले जाता है, उसी प्रकार मेरी प्रिय पत्नी को भी यमराज छीन कर ले गया ।।७२३।।

प्राणान्ते विगलत्सूर्यसोमनेत्रजलच्छलात् ।
निरगात्स्नेहसिक्तायाः पतिस्नेहरसोद्रुतम् ।।७२४।।

जिस समय वह प्राणों को त्याग रही थी तो उसके दोनों नेत्रों से जल की धारा इस तरह फूट निकली जैसे उसके हृदय से पति (और पुत्रों) का स्नेह निकल कर बाहर बह रहा हो ।।८२४।।

पद्माक्ष्या वदने लक्ष्मीसदने स्वेदसन्ततिः ।
निर्यद्भाग्यतरङ्गिण्याः प्रवाहः समदृश्यत ।।७२५।।

उसके कमल जैसे सुन्दर मुखड़े पर पसीने की कुछ बून्दें इस तरह झलकने लगीं, जैसे उसके शरीर से सौभाग्य की नदी का प्रवाह बाहर निकल रहा हो ।।७२५।।

तत्कालं बान्धवा भर्त्ता भृत्या अन्या जना अपि ।
रुदितास्रुस्रुतिव्याजान्निबापाञ्जलिमक्षिपन् ।।७२६।।

उस समय उसके पति, पुत्र बान्धव और नौकर आदि अपनी आंखों से निकलते हुए आसुओं द्वारा उसको जलाञ्जलि समर्पित कर रहे थे ।।७२६।।

निमीलितं यदा चक्षुर्लोललोचनयानया ।
दीपोद्गता द्युतिर्जाता निष्प्रभा मलिनेव सा ।।७२७।।

उस की आंखे बन्द होते ही ऐसे प्रतीत होने लगा था कि सब दीपों की ज्योति मन्द और प्रकाशहीन पड़ गई है ।।७२७।।

मूकास्तु पक्षिण: सर्वे मेघैर्मेदुरमम्बरम् ।
तमोवृता दिश: सर्वा: श्यामला वनभूमय: ।।७२८।।

उस समय सभी पक्षियों ने बोलना बन्द कर दिया । आसमान बादलों से काला हो गया । सारो दिशाओं में अंधकार फैल गया और वनों का रंग भी गहरा काला हो गया ।।७२८।।

वायोर्गत्यवरोधोऽपि संजात: सहसा शुचा ।
गाढनिद्राभिभूतेव सर्वा सृष्टिरजायत ।।७२९।।

उसके शोक में वायु की गति भी बन्द हो गई । ऐसे लगता था कि सारी सृष्टि को गाढ़ी नींद आ गई है ।।७२९।।

कलुषीकृतमेवासीत्तत्तनुत्यागवासरे ।
मेघाच्छादितमार्त्तण्डमण्डलौज्जवल्यवैभवम् ।।७३०।।

उसके देह छोड़ने के समय सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश भी बादल छा जाने के कारण काला प्रतीत हो रहा था ।।७३०।।

वृक्षा: सर्वत्र पत्रान्त:पतद्वृष्टिस्वनच्छलात् ।
अश्रुविन्दूनिवामुञ्चन् रुदन्तस्तच्छुचाकुला: ।।७३१।।

सब वृक्ष भी उसके शोक से रो रहे थे। उन वृक्षों के आंसू पानी की वे बून्दें थीं जो वृष्टि के कारण वृक्षों के पत्तों से झर-झर कर पृथ्वी पर गिर रही थीं ।।७३१।।

निरालोको हि लोकोऽयं दुर्दिनग्रस्तभास्कर: ।
कालरात्रिकुलैर्विष्वक् परित: समदृश्यत ।।७३२।।

सारे संसार में अन्धकार सा छाया दिखाई दे रहा था। जैसे बारिश वाले दिन (सूर्य होने पर भी) अन्धेरा छा जाता है । या जब कालरात्रि चारों ओर से विश्व को घेर लेती है ।।७३२।।

तया साध्व्या विना शून्यां
नास्मि क्ष्मां वीक्षितुं क्षम: ।
इतीव दु:खात् तत्कालं स्वमब्धौ
रविरक्षिपत् ।।७३३।।

सन्ध्या हो गई तो सूर्य ने दु:ख से अचानक समुद्र में छलांग लगा दी जैसे दु:खित होकर कह रहा हो कि ऐसी सती स्त्री के बिना अब मेरे लिए पृथिवी पर देखने योग्य कोई चीज नहीं रही ।।७३३।।

बांधवाश्च प्रियास्तस्या वाचाला येऽभवन्पुरा ।
दृष्टास्ते मौनमापन्ना: पौषे मूका: पिका इव ।।७३४।।

उसके सब प्रिय-सम्बन्धियों के मुंह, जो पहले उसके विषय में बातें करते नहीं थकते थे, उस समय ऐसे बन्द हो गए जैसे पौष के महीने में कोयल पक्षी मौन हो जाते हैं ।।७३४।।

शवयानसमारूढां वीक्ष्य तस्यास्तनुं तदा ।

उच्चैराक्रन्दितं शोकसम्प्लुतैः सर्वबान्धवैः ।।७३५।।

जब सम्बधियों ने देखा कि उसके शरीर को शवयान पर लिटाया जा रहा है तो सब ने ऊंचे स्वर से रोना आरम्भ कर दिया ।।७३५।।

सशंखध्वनिनिर्घोषैरुद्घोषितमिदं द्विजैः ।

सत्यं तद् रामनामैव मिथ्येदं सकलं जगत् ।।७३६।।

ब्राह्मण पण्डित शंख बजा-बजा कर उद्घोषित करने लगे कि राम का नाम ही सत्य है, और यह सारा जगत् मिथ्या है ।।७३६।।

प्राप्ते श्मशानभूमिं तच्छवयाने ह्यदृश्यत ।

तौषीतीरस्थिता शैलश्रेणी शोकजडीकृता ।।७३७।।

जब शवयान को तवी नदी पर ले गए तो तवी पर स्थित सब पहाड़ भी उसके शोक से जड़ दिखाई दे रहे थे ७३७।।

दिक्कामिनीमुखोत्कीर्णकीर्तिचन्दनचित्रकः ।

वीरेन्द्रनाथनामाऽसौ पुत्ररत्नशिरोमणिः ।।

व्याधिग्रस्तप्रियाम्बाया निष्कामं सेवकोऽनिशम् ।
अतनोदन्तिमां सेवां चिताग्निं सन्निवेशयन् ॥७३८॥

उसके सब पुत्रों में शिरोमणि पुत्ररत्न श्री वीरेन्द्रनाथ ने बीमारी के दिनों में अपनी माता की दिन-रात बड़े प्रेम से भक्ति-पूर्वक सेवा की थी, जिसकी कीर्ति चारों ओर इसी कारण फैल रही थी, अपनी माता की अन्तिम सेवा भी सम्पूर्ण कर दी, अर्थात् उसकी चित्ता में अग्नि का प्रवेश कर दिया ॥७३८॥

पुष्पशय्योचितं तस्या देहं हेमसमप्रभम् ।
निर्घृणा वान्धवा दारुशय्यायां समदीपयन् ॥७३९॥

उसके चमकते सोने जैसे शरीर को कोमल फूलों की सेज पर लिटाना चाहिए था, पर उसके बान्धवों ने लकड़ियों के ढेर में रख कर उसे आग लगा दी ॥७३९॥

चितायां ज्वलनं वीक्ष्य समन्ताज्ज्वलितं तदा ।
बन्धुवर्गस्य सुमहान् हाहाकारः समुद्गतः ॥७४०॥

जब चिता में अग्नि दे दी गई तो सब बन्धुजनों की हाहाकार ध्वनि सुनायी देने लगी ॥७४०॥

अज्वालीदनलो विष्वक् प्रसरन्सर्वतस्तदा ।
निष्कृपो मारुतोद्धूतश्चितां तां निरवग्रहः ॥७४१॥

उस समय वायु तेज बह रही थी, उस से प्रदीप्त हो कर अग्नि ने चिता को चारों ओर से क्षणों में ही घेर लिया ॥७४१॥

शुष्ककाष्ठाग्निसन्दाहजन्मा चटचटारवः ।
तापप्रक्वाथ्यमानाभ्रगङ्गाघोष इवोद्गतः ।।७४२।।

सूखी हुई लकड़ियां जब जलने लगीं तो चटचट की ध्वनि इतने जोर से उठी जैसे आकाश गंगा के जल के नीचे अग्नि जला कर कोई उसे उबाल रहा हो ।।७४२।।

पक्षिणां प्लोषसन्तापाक्रन्दनैः सर्वतो नभः ।
भूमिर्मुखरिता जाता बन्धूनाम् परिदेवनैः ।।७४३।।

अग्नि की गर्मी से घबरा कर चीखते-चिल्लाते पक्षियों के शोर से आकाश मुखरित हो रहा था, तथा सम्बन्धियों के रोने चिल्लाने की आवाजों से पृथ्वी पर भी उतना ही शोर हो रहा था ।।७४३।।

आच्छाद्यत भ्रमद्ज्वालाकरालैर्ध्वान्तराशिभिः ।
गगनं सर्वतो भीमाकारैर्नक्तंचरैरिव ।।७४४।।

आकाश धुएं के बादलों से भर गया था । ऐसे लगता था जैसे आसमान में काले काले भीमाकार राक्षस घूम रहे हैं ।।७४४।।

चिताग्निधूमसंच्छन्नं पुनः प्रज्वलिताग्निना ।
अपुनर्दर्शनायैव तस्या आविष्कृतं मुखम् ।।७४५।।

उस सती स्त्री का चेहरा पहले तो चिता की अग्नि के धुएं के कारण दिखाई नहीं दे रहा था, पर जब कुछ समय के लिए धुआं हटा, तो अग्नि देवता ने उसके चेहरे को अन्तिम बार सब को अपने प्रकाश से दिखादिया कि इस क्षण यह चेहरा आप जो

भर कर देख सखते है, पर इसके पश्चात् आप इसको न देख सकेंगे ।।७४५।।

आसमन्ताद् विसारिण्यो ज्वाला हव्यभुजो व्यधुः ।
सन्तापद्रुतहेमाब्धिसुवर्णलहरीभ्रमम् ।।७४६।।

अग्नि की ज्वालाएं चारों ओर से चिता को घेर रहीं थी, जैसे तपे हुए सोने के समूद्र से लाल-लाल लहरे उठ रहीं हों ।।७४६।।

श्मशानद्रुमषण्डानां ज्वलिता बालपल्लवाः ।
उदडीयन्त चाकाशे दीप्तपक्षैः खगैः समम् ।।७४७।।

श्मशान में ृक्षों के पत्ते भी अग्नि से जल कर आकाश में उड़ रहे थें, जहां पक्षियों का समूह पहले ही उड़ रहा था ।।७४७।।

और्वाग्नितापसन्तप्तसिन्धुघोषप्रतीतिकृत् ।
चिताया दह्यमानाया अश्रूयत चटत्कृतिः ।।७४८।।

जलती हुई चिता की चटचट की आवाज ऐसे लगती थी जैसे समुद्र के पानी को अग्नि जलाकर कोई उबाल रहा हो ।।७४८।।

धूमध्वान्ते न भूमिर्न दिशो न द्यौर्व्यभाव्यत ।
अग्निधूमसमाच्छन्नो दृश्यादृश्योऽभवद्रविः ।।७४९।।

धुएं से अन्धकार इतना गहरा होता जा रहा था कि न तो दिशाएं दिखाई देती थीं और न ही आकाश । अग्नि और धुएं; दोनों

से ढका हुआ सूर्य भी, कभी दिखाई देता था, और कभी अदृश्य हो जाता था ॥७४९॥

क्रव्यादाग्नेर्महाञ्छब्दः दीर्घीभूतार्चिषः परम् ।
तथा चटचटाघोषः प्रादुरासीद् भयंकरः ॥४५०॥

जब आग की लपटें बहुत ऊंची होती थीं तो उन से भी आवाज आती थी। चिता की जलती हुई लकड़ियों से भी भयंकर चट्‌चट् का शोर सुनाई दे रहा था ॥७५०॥

चिताग्निप्रस्फुरज्ज्वाला अभुः पाटलकांतयः ।
हृत्पीड़नादिव व्यालाः पातालविवरोद्‌गताः ॥७५१॥

चिता की अग्नि की लाल-लाल लपलपाती ज्वालाएं जब आकाश में ऊपर की ओर जाती थीं तो ऐसे लगता था जैसे पाताल लोक से निकलकर लाल जिव्हाओं वाले सांप आकाश की ओर जा रहे हों ॥७५१॥

चण्डचित्यग्निसंतप्तजला तौषी तरङ्गिणी ।
और्वोष्मवेदनाक्लेशं विवेद सरितां प्रभोः ॥७५२॥

उस दिन चिता की प्रचंड अग्नि से तवी नदी का जल भी इतना तप गया था कि तवी भी यह अनुभव कर रही थी कि समद्र के अन्दर जब और्वाग्नि जलती है तो समुद्र को कितनी मर्मान्तिक पीड़ा होती है ॥७५२॥

बंधूनाम् क्रन्दनं चाथ चितायाश्चट्‌चटारवः ।
उत्तालत्वमहत्वाय स्पर्धेते स्म परस्परम् ॥७५३॥

एक ओर तो सम्बन्धी लोग जोर-जोर से रो रहे थे, और दूसरी ओर चिता से चटचट का शोर निकलना बंद नहीं होता था। लगता था कि दोनों शोर जानना चाहते हैं कि किसकी ध्वनि अधिक ऊंची है ।।७५३।।

स्फुरत्कल्पाग्निविप्लुष्टविश्वभस्मावलीनिभा ।
तूर्णमेवचिता याता पांशुमात्राविशेषताम् ।।७५४।।

थोड़ी ही देर में कल्पाग्नि की तरह चिता जल कर राख हो गई, जैसे सृष्टि के अन्तिम दिन सारा विश्व जल कर भस्म हो जाता है ।।७५४।।

पश्यतां सर्वबन्धूनां भस्मीभूतचितानले ।
पञ्चभूतात्मको देहः पञ्चत्वमचिराद्गतः ।।७५५।।

सब बन्धुवर्ग के देखते-देखते चिता में लिटाया हुआ उसका पंचभूतों से बना हुआ शरीर उन्हीं पांच तत्वों में जा मिला ।।७५५।।

चितादहनकालोऽभूत् स्वल्पोऽप्यत्यन्तदुःसहः ।
दीर्घयामवतीदृष्टदीर्घदुःस्वप्नसंन्निभः ।।७५६।।

चिता तो थोड़े समय में ही जल कर भस्म हो गई, परन्तु वह थोड़ा सा समय भी इतना अधिक लम्बा लग रहा था जैसे रात को कोई भयानक सपना देख रहा हो ।।७५६।।

दिवाकरोऽतपत्तीक्ष्णमभीक्ष्णं भूरकम्पत ।
अवाद् द्रुमादीन् भंजंश्च महोत्पातप्रभञ्जनः ।।७५७।।

उस के स्वर्गवास के दिन सूर्य की किरणें बड़ी तीक्ष्ण लग रही थीं। सारी जमीन कांपती हुई दिखाई दे रही थी। वृक्षों को तोड़ फोड़ करता हुआ प्रचंड वायु बहने लग गया था ॥७५७॥

संध्याभ्रशाटीमुत्सृज्य रोदनायेव निर्भरम् ।
अकार्षीद् विस्तृतं शोकात् तमःकचचयं क्षितिः ॥७५८॥

रात्रि के समय रात ने भी उसके शोक से रोते हुए अपने कृष्ण वर्ण केशों को बखेर कर चारों ओर अंधकार ही अंधकार फैला दिया ॥७५८॥

गृहं प्रति निवृत्तानामसंवीक्ष्य गृहाधिपाम् ।
हाहाकारध्वनिः सर्वबन्धवानाम् समुद्गतः ॥७५९॥

जब सम्बन्धी लोग श्मशान भूमि से घर आ गए तो घर की मालकिन को पहले की तरह घर में बैठे हुए न देखकर हाहाकार करने लगे ॥७५९॥

तत्पुत्राः शोकसन्तप्ता रुदन्तोऽत्यन्तचिन्तया ।
नितान्ततान्तहृदया विश्रान्ति नाभजन्त ते ॥७६०॥

उसके पुत्र इतने दुःखित और सन्तप्त थे कि उनका शोक किसी प्रकार शान्त नहीं हो रहा था ॥७६०॥

तद्दिने रन्धनाभावात्तद्गृहं धूमवर्जितम् ।
शोकमूकं विनिर्जीवं निरुच्छवासमदृश्यत ॥७६१॥

उस घर की रसोई में, क्योंकि उस दिन खाने-पकाने का कोई भी काम नहीं हुआ था, इसीलिए धुआं आदि कुछ भी दिखाई नहीं देता था। वह घर भी शोक से संतप्त तथा मरा हुआ लगता था, जैसे उसका सांस बन्द हो गया हो ॥७६१॥

भीमवेतालमालेव कालराव्याकुलेवच ।
अभवद्रजनी चापि सर्वभूतभयावहा ॥७६२॥

दिन के बाद जब रात्रि हुई तो वह भी कालरात्रि के समान अन्धेरी तथा काले भूतों जैसी भयानक दिखाई देती थी ॥७६२॥

जाग्रत्स्वपंश्चलंस्तिष्ठन्नश्नन् पिवंश्च तत्पतिः ।
निर्गच्छंश्चापि गच्छन्वा सर्वैरुद्बाष्पमीक्षितः ॥७६३॥

लोग देखते थे कि उस के पति की आंखों से सदा आंसू गिरते रहते थे, चाहे वह जाग रहा हो, चाहे सो रहा, चाहे खड़ा हो या बैठा हो, चाहे स्नान कर रहा हो और चाहे कुछ खा-पी रहा हो ॥७६३॥

शोकातिशयविक्षिप्तचित्तवातुलताहतः ।
भ्रान्तबुद्धिः पतिस्तस्या व्यलपच्छोकविक्लवः ॥७६४॥

उसका पति किसी पागल की तरह, जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो, उसके शोक में सतप्त हो कर अंट-संट बातें कर देता था ॥७६४॥

सुखं विपद् दिनं रात्रिः सूद्यानं पितृकाननम् ।
जीवनं मरणं भार्ये त्वां विना मम साम्प्रतम् ॥७६५॥

कहता था कि आज से मुझे सब प्रकार के सुख भी विपत्ति जैसे दिखाई देते हैं। मुझे दिन भी रात जैसा काला लग रहा है। बाग बगीचे भी श्मशान प्रतीत होते हैं। हे भार्ये, तुम्हारे बिना मुझे अब जीवन भी मरण के बराबर हो गया है।।७६५।।

या त्वं कुसुमशय्यासु नागा निद्रां सुखप्रदाम् ।
श्मशानेऽद्य कथं सैव सुखं निद्रासि हा चितौ ।।७६६।।

हे भार्ये; तुम्हे तो कोमल शैय्या पर भी लेट कर सुखदायक नींद नहीं आती थी, फिर आज तुम इस उजाड़ श्मशान में आराम से कैसे सो गई हो ? ।।७६६।।

सहसा विहाय कान्तं स्वं पतिं क्वासि गता प्रिये ।
चक्राङ्गो लभते नेत्रसौख्यं किं चन्द्रिकां विना ।।७६७।।

हे प्रिये अपने पति को अचानक अकेला छोड़ कर तू कहां चली गई है ? तुम्हीं बताओ कि चांदनी के बगैर कभी चकवा-पक्षी सुख प्राप्त कर सकता है ? ।।७६७।।

प्रसन्ना कुपिता वापि कुतोऽप्यागत्य सम्प्रति ।
दर्शनं देहि नो सोढुं क्षमोऽहं विरहानलम् ।।७६८।।

चाहे तू मुझ पर प्रसन्न है, चाहे क्रोधित है, फिर भी मेरे पास आकर मुझे दर्शन दे जाओ। क्यों कि तुससे बिछुड़ कर मेरा जीवन कांटों पर चलने के तुल्य हो गया है ।।७६८।।

स्वर्गस्था बान्धवा धन्या ये त्वां पश्यन्ति नाकगाम् ।
धिङ् मां यो वञ्चितो भार्ये दर्शनामृतवर्षणैः ।।७६९।।

मेरा तो ख्याल है कि हमारे सब स्वर्गवासी वान्धव अवश्य तुम्हें स्वर्ग में आते देखकर प्रसन्न हुए होंगे, पर धिक्कार है मुझे कि मैं ही तुम्हारे दर्शनों से वञ्चित हो गया हूं ।।७६९।।

यद् वपुः कोमलं पट्टतूलशय्यामभूषयत् ।
तदेवेदं चितामध्येऽशयिष्टादृष्टविष्टुरम् ।।७७०।।

तुम्हारे कोमल शरीर को रेशम की कोमल शय्या पर सोने की आदत थी । वही तुम्हारा शरीर आज कैसे लकड़ियों की चिता के अन्दर सो गया ? वहां तुम्हें कैसे सुख मिल सकेगा ? वहां तो सांस लेने को सुराख भी नहीं होता ।।७७०।।

स्थिता जीवन यात्रायां संगे मे त्वं निरन्तरम् ।
अतो मृत्युमुखे यान्त्या पृथक्त्वं साधितं कुतः ।।।७७१।।

तू जीवन की यात्रा में सदा मेरे साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलती रही । अब मृत्यु के मुंह में जाते समय मुझ से अलग क्यों हो गई ? ।।७७१।।

गतायां त्वयि स्वर्लोकं कुत्र पश्यामि ते बद ।
वात्सल्यपुलकस्मेरं स्निग्धोक्तिमुखरं मुखम् ।।७७२।।

हे प्रिये, तू स्वर्ग लोक में चली गई। पर मुझे यह नहीं बताकर गई कि प्यार भरी बातें करने वाला, प्रेम से पुलकित तेरा सुन्दर चेहरा अब मैं कहां देखूंगा ? ।।७७२।।

कोविदध्यात् क्लमच्छेदं श्रान्तस्य स्वामिनो मम ।
कोऽस्याश्रयः सहायो वा कानि प्रावरणाणि वा ।।

श्रमग्लानस्य भैषज्यं किं स्यादस्य विनोदनम् ।
इति स्वर्गं प्रयान्त्या किं त्वया
हन्त न चिन्तितम् ।।७७३।।

स्वर्ग में जाते समय क्या तुमने नहीं सोचा कि तुम्हारे पीछे जब कभी तुम्हारा पति घर में थका हुआ आएगा, तो तुम्हारी भान्ति उसकी सेवा कौन करेगा ? उसको सहारा कौन देगा ? उसको खाना कौन खिलाएगा ? बीमारी के दिनों में उसका दवा-दारू तथा अन्य सेवा कौन करेगा ? कपड़े कौन पहनाएगा ? उसके विनोद की सामग्री कौन जुटाएगा ? इन सब बातों की चिन्ता क्या तुम्हें बिल्कुल नहीं रही थी ? ।।७७३।।

त्वया मधुश्रियेवाद्य सोऽयं दयितपादपः ।
शीतवातातपैः शुष्यन् शोभया किं वियोजितः ।।७७४।।

तुम्हारा पति उस वृक्ष की तरह लग रहा है जो सर्दियों की ठण्डी आंधियों में और गर्मियों की झुलसाने वाले हवाओं में सूखता जा रहा है । तुम बसन्त ऋतु बन कर उसे हराभरा क्यों नहीं कर देती ? ।।७७४।।

तावत्कान्ते विरसान् यापयदिबसान्
स्थिताऽपिवैकुण्ठे ।
यावत्तगुणलुब्धस्तत्र पतिस्तव न
सम्मिलति ।।७७५।।

हे प्रिये, अब तू बैकुण्ठ लोक को चली तो गई है पर मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि बैकुण्ठ में रहती हुई भी तुम्हारे

दिन वहां नीरस व्यतीत हो रहे होंगे । जिस तरह भी हो तुझे इन दिनों को वहां बिताना ही पड़ेगा। तुम्हारे सद्गुणों का लोभी तुम्हारा पति वहां आ कर तुम्हें जल्दी ही मिलने वाला है ।।७७५।।

चित्ते वाप्यथ संकल्पे पश्यामि त्वन्मुखाम्बुजम् ।

शृणोमि ताः कथाः कुत्र कान्ते स्नेहात्मिकास्तव ।।७७६।।

यदि मैं अपनी आंखें बन्द कर लूं तो तुम्हारे कमल जैसे सुन्दर मुख को अपने हृदय में संकल्प द्वारा देख सकता हूं। पर तुम्हारो स्नेहपूर्ण वाणी के मीठे स्वर मेरे कानों में कैसे पड़ सकते हैं ? ।।७७६।।

उद्विग्नचेतसा यत् त्वां विस्मरामि कदाप्यहम् ।

स्वप्नेऽपि तद् व्यलीकं ते न

स्मरामि प्रियेऽप्रियम् ।।७७७।।

इतना तो सभव है कि तुम्हारे विषय में दूसरी कोई बात लापरवाही से मैं भूल भी जाऊं पर एक बात मैं कभी भी भूल नहीं सकता, कि तुम से कभी कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिसे मैं अनुचित कह सकूं ।।७७७।।

अपराद्धं मया भार्ये नूनं ते पापबुद्धिना ।

मन्ये तेनैव रुष्टा त्वमसहाया गता दिवम् ।।७७८।।

हे भार्ये; अपनी मूर्खता से तुम्हारा कोई न कोई अपराध कभी न कभी मैंने जरूर किया होगा जिस के कारण शायद तू

मुझ से रूठ कर, बगैर मुझे अपने साथ लिए, अकेली ही चली गई है ।।७७८।।

रुष्टासि चेद् त्यज क्रोधं देहि वादयं ममादरात् ।

मौनं मा भज हे कान्ते न जीवामि त्वया बिना ।।७७९।।

यदि तू सचमुच रूठ गई है, तो क्रोध छोड़कर मेरे साथ पहले जैसी स्नेह पूर्वक बातें कर। इस तरह मौन मत धारण कर, क्योंकि इतना तो तुम जानती हो कि मैं तुम्हारे बगैर जिन्दा नहीं रह सकता ।।७७९।।

क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कं पृच्छामि करोमि किम् ।

वरं मरणमेवास्तु माऽस्तु वै मम जीवनम् ।।७८०।।

अब मैं कहां जाके बैठूं, किससे बातें करुं, करुं भी तो क्या करुं, इस से तो यही अच्छा है कि मेरा भी मरण हो जाए, अब मेरे जीने से लाभ ही क्या है ? ।।७८०।।

विहृतं क्वापि नो कान्ते मां विना स्वोत्सवक्षणे ।

कथमेकाकिनी मुग्धे भजसे स्वर्गसम्पदः ।।७८१।।

हे प्रिये, मेरे बगैर क्या तूने कभी कोई ऐसा उत्सव का क्षण गुजारा, जब मैं तुम्हारे साथ न होता था ? तो फिर इतना तो बता जाओ, कि तू स्वर्ग का सुख मेरे बगैर अकेली कैसे भोग सके गी ? ७८१।।

मामनापृच्छ्य या त्वं नो लङ्घसे गृहदेहलीम् ।

अपृच्छ्य सा कथं याता परलोकमपि प्रिये ।।७८२।।

पहले मुझ से पूछे वगैर, तू घर की देहली से दो कदम आगे नहीं जाती थी। हे प्रिये, आज मुझे बताए वगैर तू दूसरे लोक तक कैसे चली गयी ? ।।७८२।।

सुखोचितः सुखं दत्तः सर्वायुष्यं प्रिये त्वया ।
अकाण्डे पातितोऽदभ्रे दुःखश्वभ्रे कथं प्रियः ।।७८३।।

प्रिये, तू कहा करती थी कि पति को हर प्रकार का सुख मिलना चाहिए और इसी लिए तूने आयु भर मुझे पूर्ण सुख दिया। फिर आज उसी पति को दुःखों के गहरे कुएं में फेंक कर तू अबा कहां गुम हो गयी ? ।।७८३।।

न मे दुःखं गता दूरं किन्तु दुःखतरं त्विदम् ।
अनाथं मां विधायैवं कथमेकाकिनी गता ।।७८४।।

मुझे इस बात का इतना दुःख नहीं कि तू मुझ से अब बड़ी दूर चली गयी है। पर इस बात का दुःख जरूर है कि तूने मुझे अनाथ, और बेसहारा कर दिया, और स्वयं तू अकेली चली गयी ।।७८४।।

तव भार्यामृताऽस्तीति बन्धुवान्धवभाषितम् ।
श्रुत्वा वच्मि मृषोक्तं वो
न मे भार्या मृताऽस्तिसा ।।७८५।।

मेरे बन्धु-बान्धव मुझे कहते हैं कि तुम्हारी भार्या तो मर गई। उनकी यह बात सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ कर कहता हूं कि आपकी यह वात ठीक नहीं है। वह मरी नहीं है, क्यों कि ।।७८५।।

पश्यामि तां प्रियां विष्वक् सदा तद्भावभावितः ।
अन्तर्बहिश्चरंस्तिष्ठन् स्वपन् जाग्रन् पिबन्नदन् ।।७८६।।

वह मुझे हर जगह दिखाई दे रही है । यहां भी, वहां भी, इधर भो, उधर भी । जागते हुए भी, सोते हुए भी, खाते हुए और पीते हुए, आते हुए, जाते हुए । वह तो हर समय मेरे सामने खड़ी मुझे दिखाई देती है । फिर उसे मरी हुई कैसे कहूं ? ।।७८६।।

याऽभूत्संगे स्थिता कान्ता स्वर्गसौख्यप्रदायिनी ।
तस्या एवाधुना जाता पीड़ाप्रदायिनी स्मृतिः ।।७८७।।

हे भार्ये, तू जब तक भू लोक में मेरे साथ रही मुझे सदा सुख ही देती रही । फिर मुझे बताओ कि आज तुम्हारी याद मुझे इतना दुःख क्यों दे रही है ।।७८७।।

त्यक्त्वा मां क्व गता साऽद्य चक्षुरानन्ददायिनी ।
प्रीतिविश्रम्भपात्रं मे भाजनं सुखदुःखयोः ।।७८८।।

तुम तो मेरी आंखों की ज्योति थीं, मेरी प्रीति तथा विश्वास का पात्र थीं, मेरे सुख दुःख में सदा शरीक होती थीं । फिर आज मुझको छोड़कर तुम कैसे चली गई हो ? ।।७८८।।

अभद्रं निन्दितं धातः पापकर्म कृतं त्वया ।
यद् हंसयुगलादेकामवधीस्त्वं निरागसाम् ।।७८९।।

हे विधाता, तूने बड़ा बुरा एवं निन्दित पापकर्म किया है, क्योंकि तूने सुख से विचरते हुए हंसों के जोड़े में से एक को

मृत्युका ग्रास बनादिया, जिसने तुम्हारा कोई भी अपराध नही किया था ।।७८९।।

करुणार्द्रो विधातस्त्वं दयासिन्धुस्तव श्रुतिः ।

कारुण्यवारिधे ब्रूहि गता कुत्र दया तव ।।७९०।।

लोग तो कहते कि विधाता के चित्त में सदा दया और करुणा का समुद्र हिलोरें लेता रहता है । अब मुझे बताओ, कि उस करुणा के समुद्र में से मेरे लिए क्या तुम्हारे मन में दया की एक बूंद भी नहीं रही ? ।।७९०।।

क्षिप्त्वा मां दुःखसिन्धौ यत् स्वयं त्वं सुखमेधसे ।

वदन्तु किं न लोका वै देवो दुर्बलघातकः ।।७९१।।

इस प्रकार मुझे दुःख के सागर में फैंक कर, तुम स्वयं सुख से समय व्यतीत कर रहे हो, तो क्या लोग तुम्हें यह न कहें गें कि विधाता भी दुर्बल लोगों को ही अधिकतर सताता है ।।७९१।।

स्वप्नेऽपि जानता येन नापराद्धं कदाचन ।

अर्दयंस्तं भृशं चैवं किं नु पुण्यमवाप्यसि ।।७९२।।

हे विधाता, मैंने जानबूझ कर तो कभी कोई अपराध नहीं किया । निरपराधियों को तू जो दुःख दे रहा है, पता नहीं ऐसा करने से तुझे क्या पुण्य प्राप्त होगा ? ।।७९२।।

जनान्पीडयतो नित्यं न दृष्टा ते दया मया ।

ब्रुवन्तीति कथं लोका दयालुर्विश्वसृड् ध्रुवम् ।।७९३।।

मुझ जैसे निरपराध लोगों को नित्य इस प्रकार दुःख और पीड़ा देकर पता नहीं तुम्हारी दया कहां चली जाती है ? फिर लोग कैसे कहेंगे कि विधाता तो दया का सागर है ॥७९३॥

प्राप्नुवन्ति यथा लोकाः पापपुण्यफलं भुवि ।
प्राप्स्यसि ध्रुवमेवं त्वं स्वीयदुष्कर्मणां फलम् ॥७९४॥

सब लोगों को संसार में अपने पाप और पुण्य कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है । तब क्या तुम्हें भी उसी प्रकार अपने दुष्कर्मों का फल नहीं मिलेगा ? ॥७९४॥

द्रष्टारो मां वदन्त्वेव जातोऽहं वातुलः किमु ।
स एवाहं किमन्यो वा निर्णेतुं नास्म्यहं क्षमः ॥७९५॥

शायद मैं पागल हो गया हूं, क्यों कि अब मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि मैं वही हूं, जो मैं पहले हुआ करता था, या कुछ और ही बन गया हूं। मुझ से तो निश्चय से कुछ कहा नहीं जाता । मुझे देखने वाले ही मेरी दशा देख कर इस बात का निर्णय कर सकते हैं ॥७९५॥

वर्ण्यते हृद्गतो भावो यस्यै विश्वासभाजनम् ।
सहाया सेविका भार्या नैव सा क्वाऽपि दृश्यते ॥७९६॥

अब तो मुझे उस जैसा कोई भी विश्वासपात्र सहायक, सेवक आदि नहीं मिल रहा जिस को मैं अपने हृदय की बातें दिल खोल कर बता सकूं ॥७९६॥

यया सार्धं वयो नीतं गता सा सुप्रिया मम ।
आजीवनं चलत्येषा तद् वियोगविषव्यथा ॥७९७॥

अपनी प्रिय पत्नी के साथ मैं ने सारी आयु बिता दी। आज वह भी मुझको छोड़कर चली गई। उसके वियोग की पीड़ा अब सारी उम्र मुझे अकेले ही भोगनी पड़ेगी ॥७९७॥

इदं देहोटजं जीर्णं केशतृणगणावृतम् ।

सच्छिद्रं रोचते नाद्य वार्धक्यदुर्दिने मम ॥७९८॥

मेरा देह उस कुटिया जैसा है जो बड़ी पुरानी हो गई हो, जिसके ऊपर केशरूपी तिनकों का छप्पर पड़ा हो, पर जिसमें जगह - जगह सुराख हो गए हों और जो वृद्धावस्थारूपी बरसात में जगह-जगह छिद्र होने से पानी गिरते रहने के फलस्वरूप भद्दी लगती हो ॥७९८॥

तदैवाहं भविष्यामि परिपूर्णमनोरथः ।

जीर्णदेहस्य निर्याणं सुखेन भविता यदा ॥७९९॥

अब मेरा एक मनोरथ पूरा होना रह गया है कि मेरे प्राण जब भी मेरे शरीर से निकलें सुखपूर्वक निकलें ॥७९९॥

एवमुक्त्वा पतिस्तस्या मुखमाच्छाद्य वाससा ।

भूमौ निपत्य निःशब्दमरुदत्तच्छुचाकुलः ॥८००॥

इस प्रकार की बातें करते हुए उसका पति भूमि पर गिर पड़ा और अपने मुंह पर कपड़ा डाल कर शोक से व्याकुल हो सिसकियां भरने लगा ॥८००॥

प्रलापमुखरं तस्याः पतिमेवं शुचार्दितम् ।

आनयन्भवनान्तस्तं रुदन्तो बान्धवा बलात् ॥८०१॥

उसके पति को अंट संट बकते हुए देख कर बान्धव लोग जबरदस्ती घर के अन्दर ले गये ॥८०१॥

कृत्वैवं वर्णनं तस्याः पत्युः शोकार्दितस्य च ।
नारदःसोऽवदत्सर्वान्मुनींस्तत्र समागतान् ॥८०२॥

शोक से दुःखी पति का इस प्रकार वर्णन करके ऋषि नारद जी सब मुनियों को कहने लगे ॥८०२॥

वीरदेवी महादेवी महाभागा महासती ।
परित्यज्य महीलोकं स्वर्गलोके महीयते ८०३॥

कि वीर देवी महादेवी थी, महासती थी, पृथ्वी से सीधी स्वर्ग लोक जाकर उसने वहां भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली ॥८०३॥

एषा सर्वत्र कल्याणी वीरदेव्याःकथा शुभा ।
धन्या यशस्या चायुष्या पुण्या स्वर्ग फलप्रदा ॥८०४॥

वीर देवी की यह कथा बड़ी शुभ कारिणी, कल्याण दायिनी यश तथा आयु बढ़ाने वाली, और स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली, तथा बड़ा पुण्य देने वाली है ॥८०४॥

यः शृणोति प्रयत्नेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रीयन्ते दैवतानि च ॥८०५॥

जो कोई भी इस कथा को यत्न से सुनता है, उसकी सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं । उसके पितर तथा सब देवता भी प्रसन्न होते हैं ॥८०५॥

श्रुत्वैवं मुनयस्तत्र नारदोक्तां वरां कथाम् ।
नत्वा भक्त्या समाजग्मुः
कान्तारे नैमिषे पुनः ॥८०६॥

नारद मुनि जी से यह सुन्दर कथा सुनकर सब मुनि लोग उन्हें भक्ति से प्रणाम करके वापिस नैमिषारण्य में चले आए ॥८०६॥

इति श्री पतिव्रतावीरदेवीचरितम्